नवंबर, 1999 सात रुपये

आजकल

साहित्य एवं संस्कृति का मासिक



बाल-दिवस पर विशेष सामग्री

❑ बीसवीं सदी का बाल-साहित्य : *हरिकृष्ण देवसरे* ❑ शताब्दी के अंत में बाल कविता : *प्रकाश मनु*
❑ भटकाव और नई दिशा : *देवेंद्र कुमार* ❑ प्रख्यात बंगला बाल-साहित्यकार सुकुमार राय का परिचय *स्मृति गुप्ता* द्वारा तथा दक्षिण के बाल-साहित्य पर *आर.के.मूर्ति*
❑ बाल-साहित्यकारों से बातचीत ❑ *आशापूर्णा देवी* तथा *मोहनलाल गुप्ता* की कहानियां
साथ में *शताब्दी की चुनी हुई बाल कविताएं*

शताब्दी की कुछ चुनी हुई बाल कविताएं

देल छे आए

श्रीधर पाठक

बाबा आज देल छे आए,
चिज्जी पिज्जी कुछ ना लाए।
बाबा क्यों नहीं चिज्जी लाए,
इतनी देली छे क्यों आए।
कां है मेला बला खिलौना,
कलाकंद लड्डू का दोना।
चूं चूं गाने वाली चिलिया,
चीं चीं करने वाली गुलिया।
चावल खाने वाली चुइया,
चुनिया मुनिया मुन्ना भइया।
मेला मुन्ना मेली गैया,
कां मेले मुन्ना की मैया।
बाबा तुम औ कां से आए,
आं आं चिज्जी क्यों ना लाए!

बनावटी सिंह

सुखराम चौबे गुणाकर

गधा एक था मोटा ताजा,
बन बैठा वह वन का राजा।
कहीं सिंह का चमड़ा पाया,
चट वैसा ही रूप बनाया।
सबको खूब डराता वन में,
फिरता आप निडर हो मन में,
एक रोज जो जी में आई,
लगा गरजने, धूम मचाई।
सबके आगे ज्यों ही बोला,
भेद गधेपन का सब खोला।
फिर तो झट सबने आ पकड़ा,
खूब मार छीना वह चमड़ा।
देता गधा न धोखा भाई,
तो उसकी होती न ठुकाई !

सरकस

मैथिलीशरण गुप्त

होकर कौतूहल के बस में,
गया एक दिन मैं सरकस में।
भय-विस्मय के काम अनोखे,
देखे बहु व्यायाम अनोखे।
एक बड़ा-सा बंदर आया,
उसने झटपट लैंप जलाया।
डट कुर्सी पर पुस्तक खोली,
आ तब तक मैना यों बोली।
हाजिर है हजूर का घोड़ा,
चौंक उठाया उसने कोड़ा।
आया तब तक एक बछेरा,
चढ़ बंदर ने उसको फेरा।
टट्टू ने भी किया सपाटा,
टट्टी फांदी, चक्कर काटा।
फिर बंदर कुर्सी पर बैठा,
मुंह में चुरट दबाकर ऐंठा।
माचिस लेकर उसे जलाया,
और धुआं भी खूब उड़ाया।
ले उसकी अधजली सलाई,
तोते ने आ तोप चलाई।
एक मनुष्य अंत में आया,
पकड़े हुए सिंह को लाया।
मनुज सिंह की देख लड़ाई,
की मैंने इस भांति बड़ाई।
कहीं साहसी जन डरता है,
नर नाहर को वश करता है।
मेरा एक मित्र तब बोला,
भाई, तू भी है बस भोला।
यह सिंही का जना हुआ है,
किंतु स्यार यह बना हुआ है।
यह पिंजड़े में बंद रहा है,
कभी नहीं स्वच्छंद रहा है।
छोटे से यह पकड़ा आया,
मार-मारकर गया सिखाया।
अपने को भी भूल गया है,
आती इस पर मुझे दया है!

चंदामामा

रामनरेश त्रिपाठी

चंदामामा गए कचहरी,
घर में रहा न कोई।
मामी निशा अकेली घर में,
कब तक रहती सोई।।
चली घूमने साथ न लेकर,
कोई सखी सहेली।
देखी उसने सजी सजाई,
सुंदर एक हवेली।।
आगे सुंदर पीछे सुंदर,
सुंदर दाएं-बाएं।
नीचे सुंदर ऊपर सुंदर
सुंदर सभी दिशाएं।।
देख हवेली की सुंदरता
फूली नहीं समाई।
आओ नाचें उसके जी में,
यह तरंग उठ आई।।
पहले वह सागर पर नाची,
फिर नाची जंगल में।
नदियों पर नालों पर नाची,
पेड़ों की ओझल में।।
फिर पहाड़ पर चढ़ चुपके से,
वह चोटी पर नाची।
चोटी से उस बड़े महल की,
छत पर जाकर नाची।।
वह थी ऐसी मस्त हो रही,
आगे क्या गति होती।
टूट न जाता तार कहीं जो
बिखर न जाते मोती।।
छूट गया नौलखा हार जब
मामी रानी रोती।
वहीं खड़ी रह गई छोड़कर,
यों ही बिखरे मोती।।
पाकर हाल दूसरे ही दिन,
चंदामामा आए।
कुछ शरमाकर खड़ी हो गई,
मामी मुंह लटकाए।।
चंदामामा बहुत भले हैं,
बोले- क्यों है रोती।
दीया लेकर घर से निकले,
चले बीनने मोती!!

भोला और भालू

श्रीनाथ सिंह

हुआ सवेरा मुर्गा बोला,
घर से चला टहलने भोला।
मिला राह में उसको भालू
लगा मांगने रोटी आलू।

आलू बिकने गया हाट में,
भालू सोने लगा खाट में।
टूटी खाट गिर पड़ा भालू,
अब न चाहिए रोटी आलू!

नटखट हम

स्वर्ण सहोदर

नटखट हम, हां नटखट हम।
करने निकले खटपट हम।।
आ गए लड़के, पा गए हम।
बंदर देख लुभा गए हम।।
बंदर को बिजकावें हम।
बंदर दौड़ा भागे हम।।
बच गए लड़के, बच गए हम।
नटखट हम, हां नटखट हम।।

बर्र का छत्ता पा गए हम।
बांस उठाकर आ गए हम।।
छत्ते लगे गिराने हम।
ऊधम लगे मचाने हम।।
छत्ता टूटा बर्र उड़े।
आ लड़कों पर टूट पड़े।।
झटपट हटकर छिप गए हम।
बच गए लड़के, बच गए हम।।

बिच्छू एक पकड़ लाए।
उसे छिपाकर ले आए।।
सबक जांचने भिड़े गुरू।
हमने नाटक किया शुरू।।
खोला बिच्छू चुपके से।
बैठे पीछे दुबके से।।
बच गए गुरू जी, खिसके हम।
पिट गए लड़के, बच गए हम!!

इस अंक में

ICCN-0971-8478

स्थापित 1945

आजकल

लेख

5. बीसवीं सदी का बाल-साहित्य
बाल-साहित्य के क्षेत्र में हुई प्रगति का विवरण दे रहे हैं *हरिकृष्ण देवसरे*

8. शताब्दी के अंत में बाल कविता
बीसवीं शताब्दी के अंत तक आते-आते बाल कविता में हुए प्रयोगों और बदलावों की विस्तृत जानकारी *प्रकाश मनु* द्वारा

31. 'पगला सांड पड़े पीछे तो कैसे करें बचाव !'
बंगला बाल-साहित्यकार सुकुमार राय के कृतित्व का परिचय दे रही हैं *स्मृति गुप्ता*

36. भटकाव और नई दिशा
लोककथाओं और पौराणिक कथाओं को बाल कहानियों में शामिल करना भूल होगी – बाल कथा साहित्य पर *देवेंद्र कुमार*

40. दक्षिण भारत का बाल-साहित्य
दक्षिण भारत के बाल-साहित्य का परिचय दे रहे हैं *आर. के. मूर्ति*



42. बच्चों के व्यक्तित्व का विकास
'बाल भवन' एक ऐसा आंदोलन है जिसके अंतर्गत बच्चे अपनी निजी संकल्पना के आधार पर स्वतंत्रतापूर्वक रचना करते हैं। राष्ट्रीय बाल भवन की गतिविधियों का परिचय *मधु पंत* द्वारा

साक्षात्कार

16. मुझे हिंदी बाल-साहित्य का कोई भविष्य नहीं दिखाई देता !
दामोदर अग्रवाल से *रमेश तैलंग* की बातचीत

22. बाल-साहित्य में दखलंदाजी न करके 'बड़े' लेखकों ने 'कृपा' ही की है !
बालस्वरूप राही से *रमेश तैलंग* की बातचीत

34. बाल कविताओं में नटखटपन जरूरी है !
शेरजंग गर्ग से *प्रकाश मनु* की बातचीत

कहानी

18. चिट्ठी
मोहनलाल गुप्ता

26. तुलतुल का भविष्य भय
आशापूर्णा देवी (बंगला)

कविताएं

आवरण-2 : *श्रीधर पाठक, सुखराम चौबे गुणाकर, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीनाथ सिंह, स्वर्ण सहोदर*

24. : *सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर, विद्याभूषण विभु, शकुंतला सिरोठिया*

25 : *निरंकार देव सेवक, आरसी प्रसाद सिंह, द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, सोहनलाल द्विवेदी, सरस्वती कुमार दीपक, रमापति शुक्ल*

आवरण-3 : *सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग, शांति अग्रवाल, दिविक रमेश, दामोदर अग्रवाल, सूर्यभानु गुप्त, योगेंद्र कुमार लल्ला, श्रीप्रसाद*

पुस्तक चर्चा

45. बाल-साहित्य को समृद्ध करती पुस्तकें
विमा देवसरे

स्तंभ

2. पत्र

47. समीक्षा

वर्ष : 56; अंक : 7; पूर्णांक : 661;
नवंबर 1999, कार्तिक-अग्रहायण - 1921

संपादक
सुभाष सेतिया
सहायक संपादक
योगेंद्र दत्त शर्मा
उप संपादक
रेमी कुमारी

आवरण : *पंकज झा*
सज्जा : *एम.एम. परमार*
संपादकीय पत्र व्यवहार :
संपादक **आजकल** प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001,
दूरभाष : 3387876, फैक्स : 3387876
E-Mail : Indiapub@nda.vsnl.net.in
संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : **डी.एन. गांधी**

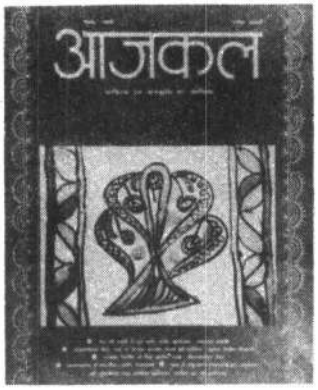
चंदे की दरें :
एक प्रति : 7 रुपये; वार्षिक : 70 रुपये;
दो वर्ष : 135.00; तीन वर्ष : 190 रुपये

चंदे संबंधी पूछताछ :
के.एस. जगन्नाथ राव
विज्ञापन व प्रसार व्यवस्थापक
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 दूरभाष : 6105590

हमारे विक्रय केंद्र
(यहां वार्षिक चंदा जमा कर सकते हैं।)
नई दिल्ली : बुक गैलरी, पटियाला हाउस; दूरभाष : 3387983
सुपर बाजार कनाट प्लेस, दूरभाष : 3313308
दिल्ली : बुक शाप, पुराना सचिवालय; दूरभाष : 2518906
लखनऊ : 27/6, राममोहन राय मार्ग; दूरभाष : 245785
कलकत्ता : 8, एस्प्लेनेड ईस्ट; दूरभाष : 2488030
पटना : बिहार राज्य सहकारिता बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ; दूरभाष : 653823
मुंबई : कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर; दूरभाष : 2612081
तिरुअनंतपुरम; गवर्नमेंट प्रेस के निकट; दूरभाष : 330650
हैदराबाद : राज्य पुरातत्व संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन; दूरभाष :236393
चेन्नई : राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष : 4917673
बंगलौर : एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला; दूरभाष : 553724

टाइपसेट: **दिनेशचंद्र जोशी**

•



किसी से कम नहीं

• जून अंक पढ़कर मुझे प्रसन्नता इस बात की हुई कि जिन सूफी संतों ने मलिक मुहम्मद जायसी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए मानवता को मूल्यबद्ध किया और प्रेमानुभूति के प्रसंगों द्वारा जनमानस को आत्मीयता के रंग में रंगने का प्रयास किया; उसे आपने शृंखलाबद्ध करके, प्रकाश में लाकर महत्वपूर्ण कार्य किया है।

जिन सूफी कवियों ने भारतीय संस्कृति एवं इतिहास को रूपायित कर मिथकीय काव्य-शैली को नया आकार प्रदान किया, उनका काव्य प्रचार-प्रसार के अभाव में लोकमानस में बहुचर्चित न हो सका।

शहजाद वारसी का लेख 'प्रेम की मस्ती में डूबे सूफी कवि' निर्विवाद रूप से अत्यंत उपयोगी और प्रेरणादायक है। कबीरपंथियों की भांति खंडन-मंडन की प्रवृत्ति और निराकार उपासना के विभिन्न आयाम इन सूफी कवियों के काव्य में भी मिलते हैं। बुल्लेशाह कवि का यह उदाहरण इसका प्रमाण है–

जला दो आसन
फोड़ दो अर्घ्य पात्र को
जप, माला, कमंडल और
छोड़ दो छड़ी को ।

...प्रेम का क्षेत्र तो नित नूतन है सदा।

अलमस्त तथा मनमौजी सूफी संतों की अल्हड़ता और सपाट बयानी किसी से कम नहीं।

–ओमप्रकाश सिंह, रायबरेली

पुनर्प्रकाशन

• इस अंक की विशेषता है बुल्लेशाह पर आलेख और कथाकार कामतानाथ की रचना प्रक्रिया को प्रस्तुत करना तथा उनसे बातचीत।

कुमार दिनेश प्रियमन का लेख 'अर्थ के विरुद्ध शाश्वत संघर्ष की कविता' एक संग्रहणीय लेख है, किंतु यही लेख *दस्तावेज* के अंक 79 (जून 98) में भी प्रकाशित हो चुका है। मेरा दिनेश जी से आग्रह है कि हर बार वह उसी विषय पर भिन्न आयाम युक्त लेख लिखें। आशा है, पुनर्प्रकाशन की इस पद्धति पर संपादक महोदय की भी नीति स्पष्ट होगी।

–विजय पंडित, उन्नाव

खटक गया

• अंक में पृष्ठ 9 पर आंगन को आगंन, पृष्ठ 11 में इश्के हक़ीक़ी को इश्के हक़ीक़ी (बुल्लेशाह ने भी... इश्के हकीकी का रास्ता... प्रदान करती है।) लिखा जाना खटक गया। 'मर्द होते हुए' ... कहानी के लिए मधु कांकरिया को बधाई।

–गिरीश बिल्लोरे 'मुकुल', जबलपुर

कविता–कहानी

• गंभीर व सामयिक विषय के ज्वलंत प्रश्नों के अतिरिक्त रमेश आजाद की पाठशाला की कविताएं व मधु कांकरिया की कहानी 'मर्द होते हुए' तथा एन. प्रभाकरन की कहानी 'एक अगला जन्म' पत्रिका का स्तर अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं से ऊपर उठाती हैं।

–शूरवीर रावत, देहरादून

अच्छी कहानियां

• 'प्रेम की मस्ती में डूबे सूफी कवि : बुल्लेशाह' पढ़ा। जीवन में पहली बार 'सूफी बुल्लेशाह' का परिचय प्राप्त हुआ। लेख में दी गई चंद उनकी रचनाएं पढ़ीं जो उच्च कोटि की हैं।

मधु कांकरिया की कहानी 'मर्द होते हुए' पढ़ी। नेपाली लड़के 'कांछा' की ईमानदारी तो थी ही, लेकिन आंटी का व्यवहार कांछा के प्रति उस समय मानवीयता का उल्लंघन कर गया जब तेज वर्षा में उसको घर के बाहर सोने को कहा जहां वह रात भर की बरसात में तथा फुहारें आने पर ठंड में ठिठुरता रहा।

एन. प्रभाकरन की 'एक अगला जन्म' कहानी आलसियों की कहानी है तथा मनोविज्ञान की दृष्टि पर खरी उतरी है। दोनों ही मुसाफिर केवल बीड़ी के सहारे पूरी रात्रि काट देते हैं तथा अपने-अपने 'अगले जन्म' की मनगढ़ंत कहानी कहकर मनोरंजन कर लेते हैं।

दोनों कहानीकार प्रशंसा के पात्र हैं।

–ब्रज मोहन शर्मा, एटा

आवरण की उपयोगिता

• अंक के आवरण का कलेवर पसंद आया। आवरण पर शायद 'मंजूषा कला'– जो अंग प्रदेश की लोक कला है; इसे 'अंगिका कला' भी कहते हैं– का चित्र प्रकाशित किया गया है।

आवरण चित्र के बारे में थोड़ी-सी जानकारी भी प्रकाशित करें तो इसकी उपयोगिता बढ़ जाएगी और थोड़ा-सा ज्ञान मुझ जैसे पाठक वर्ग तक भी पहुंचेगा।

इतनी साफगोई से कामतानाथ जी ने साक्षात्कार के माध्यम से *काल-कथा* पर उठे

सवालों व विवादों का तर्क प्रस्तुत किया, यह उन जैसे साहित्यकार ही कर सकते हैं।

कहानी 'मर्द होते हुए' में तथाकथित आधुनिकाओं की घहरती नैतिकता का उत्कृष्ट चित्रण हुआ है।

'मुक्त' जी से जुड़े संस्मरण अवस्था की तमाम सीमा को तोड़कर कार्यशील बने रहने की प्रेरणा देते हैं। ऑक्तोवियो पॉज के संस्मरण इस अंक की विशेषता रहे।

सिनेमा पर सार्थक पहल पर विजयशंकर मिश्र जी ने अच्छा आलेख प्रस्तुत किया। किंतु आवश्यकता है इस सार्थक पहल की पहल पर।

कविताएं, कहानियां व अन्य रचनाएं स्तरीय रहीं।

-अजेश कुमार, जमालपुर

कविता की पीड़ा

• सूफी कवि बुल्लेशाह के बारे में दी गई सामग्री काफी प्रशंसनीय थी। ऑक्तोवियो पॉज की कविता पर दी गई टिप्पणियां बिल्कुल यथार्थवादी लगीं। मधु कांकरिया की कहानी 'मर्द होते हुए' काफी सफल थी। इस सफल कहानी के कारण मेरी तरफ से मधु जी को बधाई।

इन सबके बाद हमेशा की तरह कविताओं ने पुनः निराश किया। केवल भावना में डूबी और रस से विलग कविताएं काफी उबाऊ प्रतीत होती हैं। आम तौर पर कविता के दो आधार माने जाते हैं–दर्शन और वर्णन। आसपास के दृश्यों का दर्शन कर उसका तथ्यपरक एवं रसपूर्ण वर्णन ही कविता है। बिना रस के काव्य प्रभावशाली नहीं हो सकता। कविता रसमय न होने के कारण ही आज के पाठक इससे

आजकल का ***अब आप 2 व 3 वर्ष का चंदा भी एक साथ जमा कर सकते हैं***

मैं आपकी पत्रिका *---------- का ☐ एक वर्ष (रु. 70)

☐ दो वर्ष (रु. 135) ☐ तीन वर्ष (रु. 190) का ग्राहक बनना चाहता हूं।**

चंदे का रु. ---------- डी.डी./भारतीय पोस्टल आर्डर/

मनिआर्डर सं----------दिनांक----------संलग्न है।

हस्ताक्षर ----------

नाम :----------

पता : ----------

पिन : ☐☐☐☐☐☐

* पत्रिका का नाम

** कृपया जितने वर्ष का चदा जमा करना चाहें उस पर निशान लगा दें ' और यह फार्म भरकर : विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल 7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली 110066 के नाम भेजें । टेलीफोन : (011) 6105590

• दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएं हैं : *बाल भारती, आजकल* (उर्दू), *कुरुक्षेत्र* (हिंदी व अंग्रेजी), *योजना* (हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)। बाल भारती को छोड़कर अन्य पत्रिकाओं की चंदे की दरें:

एक वर्ष : रु. 70.00, दो वर्ष : रु. 135.00, तीन वर्ष : रु. 190.00

बाल भारती के चंदे की दरें :

एक वर्ष : रु. 50.00, दो वर्ष : रु. 90.00, तीन वर्ष : रु. 135.00

• कृपया अपना चंदा डी.डी./ पोस्टल आर्डर/ मनिआर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग, के नाम बनाएं।

• पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।

• किसी भी जानकारी के लिए लिखें:
विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक,
प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल-7,
रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066

दूर भाग रहे हैं। इसलिए यह स्थिति कविता को पीड़ा पहुंचा रही है।

निराला द्वारा आविष्कृत मुक्त छंद की कविताओं को आज के कवियों ने अपभ्रंश रूप दे डाला है। इससे पहले कि कविता की अपभ्रंशता अपनी पराकाष्ठा तक पहुंचे, उस पर हमें अंकुश लगाना होगा।

आजकल पत्रिका को कविता की पीड़ा समझनी होगी। आप अपनी पत्रिका में रसपूर्ण, छंदात्मक एवं तुकबंदीयुक्त कविताओं को भी स्थान दें।

–आशीष कुमार वर्मा, पटना

काव्यात्मक ताजगी

● मधु कांकरिया की कहानी 'मर्द होते हुए' बहुत अंदर तक झकझोर गई। कहानी का कथानक जहां अपने आप में विरल और अछूता है, वहीं इसकी भाषा में एक ऐसी काव्यात्मक ताजगी है जिस पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा जा सकता।

–उदय शंकर सिंह 'उदय', मुजफ्फरपुर

संग्रहणीय अंक

● मधु कांकरिया लिखित कहानी 'मर्द होते हुए' पढ़ते हुए कांछा के चरित्र ने काफी प्रभावित किया। कांछा का समर्पण और उसके मालकिन के ओछेपन से गुजरते हुए कहानी विशेष असर छोड़ती है।

कामतानाथ तो सचमुच वर्तमान साहित्य के महारथियों में अव्वल हैं ही, उनके उपन्यासों पर प्रदीप उपाध्याय का आलेख लेखाजोखा मात्र न होकर राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक बदलावों की गंभीरता से पड़ताल करता है। प्रेम के समंदर में डूबे सूफी कवि बुल्लेशाह पर शहजाद वारसी का आलेख छापकर आपने पत्रिका को संग्रहणीय बना डाला है।

–अशोक कुमार यादव, बिहार

स्तरीय अंक

● इस अंक की दोनों कहानियां संवेदना के स्तर पर बहुत ही सफल लगीं। कविताएं भी अच्छी लगीं। खास तौर पर मनीषा झा की कविताएं अपने छोटे-छोटे बिंबों के मार्फत मां की कई तस्वीरें उकेरती हैं। सुरेंद्र वाजपेयी के गीत बड़े प्यारे हैं। रमेश आजाद ने बच्चों की कविता में खूब पड़ताल की है। बुल्लेशाह पर तथ्यपरक लेख प्रकाशित करने के लिए बधाई।

–तारकेश्वर, मुजफ्फरपुर

उपलब्धि

● इस अंक की श्रेष्ठ उपलब्धि है कुमार दिनेश प्रियमन एवं विष्णु प्रभाकर के आलेख। दिनेश जी के लेख में न केवल लातिनी कवि ऑक्तोवियो पॉज का विश्लेषण दिया गया है बल्कि रचनाकारों को दिशा निर्देश भी दिया गया है। ऐसे लेखों से हम रचनाकार काफी लाभान्वित होते हैं। कवि पॉज जिस सूक्ष्मता से कवि, कविता और शब्द को छूते हैं, वह अलौकिक है, अद्‌भुत है। रचनात्मक प्रतिबद्धता को वह समुद्र की गहराई के साथ उभारते हैं।

दूसरी तरफ विष्णु प्रभाकर ने 'मुक्त' जी को सामने रखकर पाठकों पर उपकार किया है। ऐसे साहित्यकार आज कम हैं जो जीवन और लेखन को एकाकार कर साहित्य का सृजन जनहितार्थ करते हों। आजकल तो साहित्यकार कम और पेशेवर अधिक हैं कलमकार।

–उमाशंकर राव 'उरेंदु', देवघर

मैथिली रचनाएं भी...

● विष्णु प्रभाकर जी ने एकदम सटीक उद्धरणों के द्वारा संस्मरण को अविस्मरणीय बना दिया है। मनीषा को और पत्र लेखक सदोष हिसारी को ध्यानाकर्षण के लिए धन्यवाद। वास्तव में मैंने भी इतनी गहराई में जाकर नहीं देखा था। रणजीत साहा जैसे लोगों से इतनी बड़ी भूल कैसे हो गई। एक सुझाव है– कृपया मैथिली रचनाओं को भी छापें।

–पंकज पाराशर, पटना

मुक्त जी स्मरण

● विष्णु प्रभाकर जी ने प्रफुल्ल चंद्र ओझा– 'मुक्त' का सादर स्मरण किया है। मुक्त जी आकाशवाणी पटना में हिंदी प्रोड्यूसर थे। प्रभाकर जी का कहना है कि आज भी प्रोड्यूसर मणिकांत जी हैं पर मुक्त जी की साहित्यिकता कहां?

कथाकार कामतानाथ का साक्षात्कार भी पठनीय है। मनीषा झा की कविताएं मर्म को स्पर्श करती हैं।

–श्रीरंग शाही, औराई

सराहनीय कविताएं

● इश्क जात, मजहब नहीं देखता। सच्चे प्रेम रूपी वस्त्र पहनने वाली आत्मा न हो तो, आत्मा का न होना ही अच्छा है। ऐसी आत्मा का होना तो लज्जा की बात है– वस्तुतः सत्य ही है।

मधु कांकरिया की कहानी 'मर्द होते हुए' बाल श्रम एवं उसके शोषण की व्यथा कहती है।

कथाकार कामतानाथ से प्रदीप जी की बातचीत अच्छी लगी। वहीं विष्णु प्रभाकर एवं कुमार दिनेश प्रियमन के संस्मरण भी अच्छा बन पड़े हैं। मानिक बच्छावत, मनीषा झा और सुरेंद्र वाजपेयी की कविताएं सराहनीय है।

–जीतेंद्र राम, दरभंगा

बीसवीं सदी का बाल-साहित्य

***बीसवीं सदी के अंत तक आते-आते बाल-साहित्य एक चुनौती भरा लेखन बन गया है। टी.वी. का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि लेखकों के लिए वह चुनौती बन गया। टी.वी. के प्रोग्राम आज न केवल जानकारी दे रहे हैं, बल्कि बच्चों के मस्तिष्क में अनेक जिज्ञासाएं भी जगा रहे हैं। इन जिज्ञासाओं के उत्तर बच्चे, निश्चित ही बाल-साहित्य से चाहते हैं। इसलिए बाल-साहित्य लेखकों को इस चुनौती को ध्यान में रखकर ही बाल-साहित्य रचना करनी है। बीसवीं सदी में हुई बाल-साहित्य की यात्रा का परिचय दे रहे हैं* हरिकृष्ण देवसरे**

हिंदी बाल-साहित्य का वास्तविक स्वरूप निर्माण बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में आरंभ हुआ, जब सन् 1914 में *शिशु* और 1917 में *बालसखा* का प्रकाशन शुरू हुआ। इस समय बाल-साहित्य रचना के प्रति लोगों का दृष्टिकोण क्या था, यह *बालसखा* के प्रथम अंक के संपादकीय की इन पंक्तियों से पता चलता है- 'बालक-बालिकाओं में रुचि आना, उनमें उच्च भावनाओं का भरना और उनमें से दुर्गुणों को निकालकर बाहर करना, उनका जीवन सुखमय बनाना और उनमें हर तरह का सुधार करना।' बच्चों के लिए मनोरंजक बाल-साहित्य कथाओं को ही मान लिया गया था, जबकि कथाओं के विषय मुख्यरूप से पौराणिक, नैतिक और चरित्र विकास हुआ करते थे। किंतु धीरे-धीरे इस दिशा में बदलाव आने लगा। कविताओं में बाल-सुलभ अभिव्यक्तियों को स्थान दिया जाने लगा था। मैथिलीशरण गुप्त की 'सरकस' कविता का निम्न अंश इसका अच्छा उदाहरण है :

एक मनुष्य अंत में आया, पकड़े हुए सिंह को लाया।
मनुज सिंह की देख लड़ाई, की मैंने इस भाँति बड़ाई।

कहीं साहसी जन डरता है, नर नाहर को वश करता है।
मेरा एक मित्र तब बोला, 'भाई तू भी है बस भोला।

यह सिंहों का जना हुआ है, किंतु स्यार यह बना हुआ है।
यह पिंजड़े में बंद रहा है, नहीं कभी स्वच्छंद रहा है।

छोटे से यह पकड़ा आया, मार-मारकर गया सिखाया
अपने को भी भूल गया है, आती इस पर मुझे दया है।

इसी प्रकार अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', कामता प्रसाद गुरु, सुखराम चौबे गुणाकर, सुखदेव प्रसाद चौबे, विद्याभूषण विभु आदि अनेक कवियों ने कविताएं लिखीं जिनसे बाल-साहित्य को नई दिशा मिली। किंतु 1920 में गांधीजी के असहयोग आंदोलन के शुरू होने के बाद से लेकर 1947 तक, बाल-साहित्य में राष्ट्रीय भावना जागृत करने वाली रचनाओं को महत्व दिया गया। इसमें चरित्र उत्थान, देशप्रेम, राष्ट्रीयता, स्वदेश पर गर्व और भारत माता को दासता की जंजीरों से मुक्त कराने के संकल्प जैसे विषयों को प्रमुखता मिली :

सत्पुरुषों के जीवन से, सीखो चरित्र निज गढ़ना,
अपने गुरु से सीखो बच्चो उत्तम विद्या पढ़ना।

(ठाकुर श्रीनाथ सिंह)

की मातृभूमि की जो कहीं तुमने सेवा कुछ कहीं
तो पढ़ने लिखने का हुआ कष्ट तुम्हारा व्यर्थ नहीं।

(गोपालशरण सिंह)

इसी समय बच्चों के लिए जो कहानियां या नाटक लिखे गए, उनका मूल स्वर भी राष्ट्रीयता ही था। इतिहास से देश के लिए वीरगति पाने वालों के जीवन प्रसंगों, देश को गर्वोन्नत बनाने वाले महापुरुषों की घटनाओं को लेकर कहानियां व नाटक लिखे गए। इसी के साथ बच्चों के लिए मनोरंजक शैली में महापुरुषों और बलिदानियों की जीवनियां भी लिखी गईं। इसके अलावा बच्चों की कई पत्रिकाएं जैसे *चमचम, वानर* आदि भी प्रकाशित हुईं। यूरोप के अनेक साहसी बालक-बालिकाओं की कहानियां भी भारतीय बच्चों के लिए लिखी गईं, जिनमें उन बालकों ने अपने राष्ट्र, जाति तथा धर्म के लिए उल्लेखनीय कार्य किया था। इन कहानियों ने जहां भारतीय बच्चों में नई चेतना जागृत की, वहीं बाल-साहित्य के लेखकों को भारतीय इतिहास तथा जीवन से ऐसे पात्रों को निकालकर, बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करने की प्रेरणा मिली। सन् 40 तक माखनलाल चतुर्वेदी, आरसीप्रसाद सिंह, सोहनलाल द्विवेदी, स्वर्ण सहोदर आदि अनेक कवियों ने बाल-साहित्य को नई दिशा दी और उसे समृद्ध बनाया। इसी के साथ पटना से पं. रामलोचन शरण ने *बालक* और पं. रामदहिन मिश्र ने *किशोर* मासिकों का प्रकाशन करके भी बाल-साहित्य

को समुन्नत बनाने में योगदान किया। जहूरबख्श, देवीदयाल चतुर्वेदी, विद्याभास्कर शुक्ल आदि इस काल के प्रमुख बाल-साहित्य लेखक थे।



सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बाल-साहित्य का विकास विविध विधाओं में हुआ। बाल-साहित्य का महत्व तो समझा गया, किंतु प्रकाशकों ने इसे व्यवसाय का नया क्षेत्र समझकर खूब कमाने के उद्देश्य से बहुत कुछ ऐसी किताबें छापी जो बाल-साहित्य था ही नहीं। एक प्रकाशक ने सौ किताबों का एक सेट लोककथाओं का छाप डाला। उनमें एक ही लोककथा ज्यों की त्यों कई प्रदेशों की कहानियों में छपी थी। कई कहानियां बालोपयोगी थीं ही नहीं। फिर भी पत्र-पत्रिकाओं ने और बच्चों की नई पत्रिकाओं ने बाल-साहित्य प्रकाशित करना शुरू किया और उसमें नवीनता लाने का प्रयास किया। हालांकि *बालसखा* का प्रकाशन बंद हो गया– क्योंकि वह समसामयिक नहीं बन पाया था, फिर भी *बालसखा* ने हिंदी बाल-साहित्य को कई महत्वपूर्ण हस्ताक्षर दिए जैसे– रामसिंहासन सहाय मधुर, विनोदचंद्र पांडेय, विष्णुकांत पांडेय, श्रीप्रसाद, रामवचन सिंह आनंद आदि। टाइम्स आफ इंडिया से *पराग* का प्रकाशन शुरू हुआ, साथ ही डा. धर्मवीर भारती के संपादन में *धर्मयुग* में पूरा एक पृष्ठ बच्चों के लिए दिया गया। *पराग* जहां अपने समकालीन पाठकों के लिए रचनाएं प्रकाशित करने लगा, वहीं *धर्मयुग* में भी आधुनिक बच्चों के लिए सामग्री देने के साथ, बच्चों के लिए नए भावबोध के शिशुगीत प्रकाशित किए। इससे बाल-साहित्य-लेखन को नई दिशा मिली। इन शिशुगीतों में नए प्रयोग करने वाले कवि थे– कन्हैयालाल मत्त, सूर्यभानु गुप्त, विष्णुकांत पांडेय आदि।

सन् 1960 के बाद बाल साहित्य में बड़ी तेजी से बदलाव आया। इसी के साथ बाल-साहित्य की आवश्यकता, समकालीन बाल-साहित्य-लेखन के महत्व और बाल-साहित्य-समीक्षा की आवश्यकता को रेखांकित करने वाले लेख भी *धर्मयुग* आदि सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में लिखे गए। 1963-65 के दौरान राष्ट्रीय शैक्षिक एवं प्रशिक्षण अनुसंधान परिषद ने बच्चों की पुस्तकों का मूल्यांकन-समीक्षा करवाकर श्रेष्ठ बाल-साहित्य की सूची प्रकाशित की। इस प्रकार बाल-साहित्य की प्रगति निरंतर होती रही। 1965 में ही पौराणिक परीकथाओं की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगा और लंबी बहस चली। इस बहस के फलस्वरूप मौलिक बाल कथा लेखन की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इसी के बाद राजा-रानी की कहानियों की उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगा। प्रजातांत्रिक समाज में ये कहानियां सामंती प्रवृत्ति का पोषण करने वाली सिद्ध हुईं। इस दिशा में भी लेखकों ने सार्थक दृष्टिकोण अपनाया। यह और बात है कि कुछ बाल पत्रिकाएं पौराणिकता, भारतीय संस्कृति और इतिहास के नाम पर इन कहानियों को फिर भी प्रकाशित करती रहीं। पर यह प्रवृत्ति अंततः हठधर्मिता ही सिद्ध हुई।

सातवें दशक के अंत और आठवें दशक में हुई बाल-साहित्य की उपलब्धियां बड़ी महत्वपूर्ण रहीं । इस दौरान जबलपुर, सागर, आगरा, वल्लभ विद्यापीठ और वाराणसी विश्वविद्यालयों द्वारा बाल-साहित्य पर लिखे शोध प्रबंधों पर क्रमशः हरिकृष्ण देवसरे, राष्ट्रबंधु, ज्योतिस्वरूप, मस्तराम कपूर और श्रीप्रसाद को पी-एच.डी.की उपाधियां दी गईं। इस दौरान जिन लेखकों ने प्रमुख रूप से बाल-साहित्य रचना की उनमें कहानी-लेखन में मनोहर वर्मा, अवतार सिंह, मनहर चौहान, शीला इंद्र, वीरकुमार अधीर; हरिकृष्ण देवसरे; कविताओं में सूर्यभानु गुप्त, दामोदर अग्रवाल, गोपालकृष्ण कौल, निरंकार देव सेवक, श्रीप्रसाद, नाटकों में विष्णु प्रभाकर, रेखा जैन, सत्य अग्रवाल, श्रीकृष्ण, लक्ष्मीनारायण लाल, के.पी. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तथा विज्ञान और विविध-साहित्य लेखन में रमेशदत्त शर्मा, कमलेश्वर, अमृतलाल नागर, भगवतशरण उपाध्याय, राजेंद्र अवस्थी आदि ने बाल-साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

इस अवधि की एक उपलब्धि बाल पाकेट बुक्स भी रही है। इनके प्रकाशन का बच्चों ने स्वागत किया। कुछ प्रकाशकों ने अच्छे कथानकों और विषयों को लेकर पाकेट बुक्स छापीं, लेकिन बाद में इसमें व्यवसायी प्रकाशक भी आ गए और उन्होंने घटिया पाकेट बुक्स छापकर सारा व्यवसाय गंदा कर दिया।

शताब्दी के अंत तक पहुंचते-पहुंचते बाल-साहित्य जहां समृद्ध हुआ

है, वहीं लेखकों की सोच में काफी बदलाव आया है। बच्चों में आधुनिक दुनिया और समाज को लेकर जो जिज्ञासाएं जागी हैं, उनके अनुरूप बाल-साहित्य लिखने की दिशा में काफी प्रयास हुए हैं। किंतु दूसरी ओर घटिया कामिक्स की भरमार और टी.वी. के विस्तार के कारण बच्चों की पत्रिकाओं की मांग कम हुई है। *पराग* के बंद होने के बाद मौलिक लेखन का मंच खत्म हो गया। फिर भी *दैनिक हिंदुस्तान, अमर उजाला* जैसे अखबार बच्चों के लिए हर सप्ताह पूरा पृष्ठ छापकर बच्चों की पत्रिकाओं की कमी को पूरा कर रहे हैं।

यह बड़े खेद की बात है कि विगत पचास वर्षों में हिंदी जगत में, बाल साहित्य के महत्व के प्रति शिक्षकों, माता-पिताओं और अभिभावकों में कोई सोच नहीं बन पाई है। जन्म-दिन के उपहार के रूप में बच्चों को पुस्तकें भेंट करने की परंपरा नहीं बन पाई, जबकि बंगला, मराठी आदि भाषाओं में, यह परंपरा खूब चल रही है।

इन दिनों बच्चों के लिए जो कवि उल्लेखनीय लेखन कर रहे हैं उनमें प्रमुख हैं, श्रीप्रसाद, प्रकाश मनु, रमेश तैलंग, रमेश आजाद, श्याम सुशील, दिविक रमेश, सुरेंद्र विक्रम, शेरजंग गर्ग, बालस्वरूप राही, सूर्यकुमार पांडेय, दामोदर अग्रवाल आदि। कहानी के क्षेत्र में- श्रीप्रसाद, मेजर कृपाल वर्मा, सुरेखा पाणंदीकर, स्वप्ना दत्ता, मृदुला हालन आदि उल्लेखनीय नाम हैं, जो मौलिक और आधुनिक कहानियों द्वारा बाल-साहित्य को समृद्ध बना रहे हैं। नाटकों में रेखा जैन का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। 'उमंग' संस्था के माध्यम से वह न केवल नए-नए नाटकों की रचना करती हैं, बल्कि उनकी सुंदर और प्रयोगात्मक मंच-प्रस्तुति भी करती हैं। विभिन्न विषयों पर भी अब काफी लेखन हो रहा है। रमेशदत्त शर्मा, देवेंद्र मेवाड़ी, दिलीप साल्वी, मनोज पटेरिया आदि हिंदी में बच्चों के लिए विज्ञान-लेख और विज्ञान-कथाएं लिख रहे हैं।

बीसवीं सदी के अंत तक आते-आते बाल-साहित्य एक चुनौती भरा लेखन बन गया है। टी.वी. का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि लेखकों के लिए वह चुनौती बन गया। टी.वी. के प्रोग्राम आज न केवल जानकारी दे रहे हैं, बल्कि बच्चों के मस्तिष्क में अनेक जिज्ञासाएं भी जगा रहे हैं। इन जिज्ञासाओं के उत्तर बच्चे, निश्चित ही बाल-साहित्य से चाहते हैं। इसलिए बाल-साहित्य लेखकों को इस चुनौती को ध्यान में रखकर ही बाल-साहित्य रचना करनी है। दूसरी ओर मनोरंजन के कार्यक्रम भी बच्चों को टी. वी. में भरपूर मिलते हैं। बाल-साहित्य की रचना यदि टी. वी. के मुकाबले मनोरंजक नहीं है, तो बच्चे उसे स्वीकार नही करते। इसलिए इस चुनौती को नजरअंदाज नही किया जाना चाहिए। जिन लेखकों ने यह प्रवृत्ति अपना रखी थी कि सरल भाषा में कुछ भी लिखो या बच्चों के लिए अपनी सोच के अनुसार लिखकर दे दो, वे स्वीकार कर लेंगे- यह भ्रम अब टूटने लगा है। इसीलिए अब जो बाल-साहित्य लिखा जाना है, उसकी सोच में आधुनिकता का होना अनिवार्य है।

बाल-साहित्य के महत्व, उपादेयता, उसकी आधुनिक सोच और बच्चों की मांग को ध्यान में रखकर विगत पांच वर्षों से 'राष्ट्रीय बाल भवन' प्रतिवर्ष दो दिवसीय बाल साहित्य गोष्ठी करता है और उसमें बाल-साहित्य से जुड़े अनेक प्रश्नों पर विचार-विमर्श होता है। इन गोष्ठियों के फलस्वरूप राष्ट्रीय बाल भवन ने अब तक *त्रिपदा, त्रिधारा, त्रिविधा* और *त्रिपथगा* चार पुस्तकें प्रकाशित की हैं। बाल-साहित्य के अध्येताओं, समीक्षकों और शोधार्थियों के लिए ये पुस्तकें बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं। बाल-साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में इन दिनों युवा साहित्यकार सुरेंद्र विक्रम महत्वपूर्ण लेखन कर रहे हैं। *बाल-साहित्य : शोध एवं समीक्षा* नामक उनका ग्रंथ बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें बाल-साहित्य पर अब तक हुए शोधकार्यों का विशद विवरण है। साथ ही बाल-साहित्य संबंधी संदर्भ भी।

बाल-साहित्य को समृद्ध बनाने की दिशा में केंद्रीय साहित्य अकादेमी ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अकादेमी ने विभिन्न भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ आधुनिक बाल-साहित्य की कृतियों को प्रकाशित किया है। इनमें जसबीर भुल्लर की *जंगल टापू* (पंजाबी), कल्कि गोपालकृष्णन की *वनदेवी*, अनिता देसाई की *बिल्ली हाउस बोट पर*, उपेंद्र किशोर रायचौधुरी की *बुलबुल*, गंगाधर गाडगिल की *मोरों वाला बाग* उल्लेखनीय कृतियां हैं। अकादेमी ने हिंदी में पहली बार हैंस एंडरसन की कहानियां दो खंडों में प्रकाशित की हैं। इसी प्रकार ग्रिम बंधुओं की कहानियां भी दो खंडों में प्रकाशित की हैं। ये दोनों प्रकाशन बड़े महत्वपूर्ण हैं क्योंकि दोनों लेखक समग्र रूप में हिंदी में पहली बार आए हैं।

विगत वर्षों में बाल-साहित्य पर शोध और समीक्षा का काम भी काफी हुआ है और हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं से तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत हो रहे हैं।

हिंदी बाल-साहित्य बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अपनी पहचान बनाने में सफल हुआ है। इसकी रचना में भी प्रयोग हुए हैं और इसका आधुनिक स्वरूप निस्संदेह इसके उज्ज्वल भविष्य का परिचायक है। □

लेखकों से

- □ रचना भेजने के लिए कोई शर्त नहीं है। सभी रचनाओं का हम स्वागत करते हैं।
- □ रचना एक तरफ टाइप की हुई या स्पष्ट लिखी होनी चाहिए। रचना के अंत में अपना नाम व पूरा पता अवश्य लिखें।
- □ यदि आप अस्वीकृत रचना वापस चाहते हैं तो कृपया अपना पता लिखा, डाक टिकट लगा लिफाफा लगाना न भूलें।

संपादक

आजकल

प्रकाशन विभाग

पटियाला हाउस

नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 3387876

शताब्दी के अंत में बाल कविता

***हिंदी के ज्यादातर लेखक–आलोचक यह देखने की जहमत नहीं उठाते कि हिंदी बाल कविता कहां से चलकर कहां आ गई है। इसके बावजूद हिंदी बाल कविता के बारे में कोई भी चलताऊ फतवा जारी कर देते हैं। दरअसल चलताऊ कविताओं के ढेर के बीच सार्थक और सुंदर बाल गीतों की एक विरल किंतु प्राणवान धारा भी बही चली जाती है। इसी धारा का मूल्यांकन वस्तुतः हिंदी बाल कविता का सही मूल्यांकन है। इस शताब्दी की बाल कविताओं का मूल्यांकन कर रहे हैं* प्रकाश मनु**

हिंदी बाल कविता के बारे में कई तरह की अतिवादी बातें चल निकली हैं। कई तरह के भ्रम भी हैं और ये ज्यादातर ऐसे लोगों द्वारा फैलाए जाते हैं, जिनका बाल कविता के साथ कोई सीधा सरोकार नहीं हैं और जिन्हें बगैर पढ़े बोलने का चस्का है। हिंदी के ज्यादातर लेखक-आलोचक यह देखने की जहमत नहीं उठाते कि हिंदी बाल कविता कहां से चलकर कहां आ गई है और बाल कविताएं आज किस ढंग की लिखी जा रही हैं। लेकिन इसके बावजूद हिंदी बाल कविता के बारे में कोई भी चलताऊ फतवा जारी कर देना वे अपना हक मानते हैं। ऐसे महानुभावों की भी कोई कमी नहीं है जो हिंदी की सारी बाल कविता को 'बेकार' या 'दूसरे दर्जे की चीज' मानते हैं। दूसरी ओर, बाल-साहित्य के ऐसे 'महाप्रभुओं' की भी कमी नहीं है, जो आज के दौर को हिंदी बाल-साहित्य का 'स्वर्ण काल' घोषित करते हैं। वे यह देखने का कष्ट नहीं करते कि हिंदी में अच्छी बाल कविताओं के साथ-साथ कितनी ज्यादा निरर्थक कविताओं की भीड़ या कूड़ा-कर्कट भी साथ चला आ रहा है।

सच तो यह है कि हिंदी बाल कविता की जो मौजूदा स्थिति है, वह इन दोनों अतिवादी छोरों से अलग है। न तो आज हिंदी बाल कविता की हालत इतनी खराब है कि कोई भी अपढ़ आलोचक सगर्व घोषणा कर दे– 'हिंदी में बाल कविताएं हैं ही कहां!' और न हिंदी बाल कविता में सब अच्छा ही अच्छा लिखा जा रहा है। सच तो यह है कि हिंदी की ज्यादातर बाल कविताएं अब भी पुराने ढर्रे या लीक पर चल रही हैं। और इनमें बच्चों को उपदेश देने के साथ-साथ 'सर्दी आई, गर्मी आई, जाड़ा आया' जैसे मौसमी गीतों का कानफाड़ शोर है। लेकिन हिंदी बाल कविता सिर्फ यही नहीं है। गुच्छों में लिखी जाती ऐसी ढेर-ढेर चलताऊ कविताओं के बीच समय के साथ-साथ चलते सार्थक और सुंदर बालगीतों की एक विरल लेकिन प्राणवान धारा भी बही चली जाती है। असल में हिंदी बाल कविताओं का मूल्यांकन करते समय हमें इसी विरल, सुंदर और प्राणवान धारा पर अपनी आंख टिकानी होगी और हिंदी बाल कविता का मूल्यांकन असल में बाल कविता की इसी सार्थक प्राणवान धारा का ही मूल्यांकन है। ऐसी कविताएं कम भले ही लिखी जा रही हों, लेकिन बच्चे के मन की उमंगों, जिज्ञासाओं और सपनों से जुड़ी ऐसी कविताएं अपनी गुणवत्ता के लिहाज से इतनी कमाल की हैं कि उन्हें किसी भी भाषा के अच्छे से अच्छे बालगीतों की टक्कर में रखा जा सकता है।

एक और अच्छी बात यह है कि हिंदी बाल कविता की इस विरल धारा के लगातार अपेक्षाकृत पुष्ट और सबल होने के प्रमाण मिलते जा रहे हैं। ऐसे बाल कवियों की संख्या भी बढ़ी है, जो बाल कविता के नाम पर सिर्फ कवायद ही नहीं करना चाहते, कुछ नया और सचमुच अच्छा कहना चाहते हैं। जो बच्चे के सपनों और यहां तक कि उसके नन्हे-मुन्ने मन की बड़ी समस्याओं और मुश्किलों से भी जुड़े हैं। और इन सतर्क और संभावनापूर्ण कवियों के कारण न सिर्फ हिंदी बाल कविता का कलेवर और शिल्पगत ढांचा काफी कुछ बदला है, बल्कि कथ्य और भाषा के स्तर पर भी उसमें ताजगी दिखाई पड़ती है। खेद यह है कि इतनी अच्छी बाल कविताएं भी लिखी जा रही मामूली कविताओं की भीड़ में खो जाती हैं।

खुशी की बात यह है कि इस समय हिंदी बाल कवियों की तीन या चार पीढ़ियां एक साथ कविता लिख रही हैं। वरिष्ठ कवियों में शांति अग्रवाल, कन्हैयालाल मत्त, दामोदर अग्रवाल, शेरजंग गर्ग, श्रीप्रसाद, राष्ट्रबंधु, बालकृष्ण गर्ग, देवेंद्र कुमार, रमेश कौशिक, बाबूराम शर्मा विभाकर, गोपीचंद श्रीनागर, राजनारायण चौधरी की कविताएं निरंतर पढ़ने को मिल जाती हैं। इसके बाद की पीढ़ी में जिन कवियों ने तेजी से पहचान बनाई है, उनमें दिविक रमेश, रमेश तैलंग, कृष्ण शलभ, रमेशचंद्र पंत, हरीश निगम, राजा चौरसिया, सुरेंद्र विक्रम, यश मालवीय, श्याम सुशील, रमेश आजाद, विनोद भृंग, नीलिमा सिंह के नाम लिए जा सकते हैं। नए लिखने वालों में सुनील जोगी, अरविंद बक्शी, रामानुज त्रिपाठी, किशोरकुमार कौशल, हरि मृदुल, तथा चिन्मय कुलश्रेष्ठ के नाम तत्काल याद आ रहे हैं। यों इस दौर में इतने लोग एक साथ बाल कविताएं लिख रहे हैं कि उनके नामों की कोई मुकम्मल सूची बनाना शायद संभव ही नहीं है।

शुरूआत ऐसी कविताओं से की जाए, जिनमें बात कहने का ढंग इतना नाटकीय और अनूठा है कि ये कविताएं मन पर सीधे-सीधे नक्श हो जाती हैं। इनके जादुई बिंब-विधान और लयकारी के कारण बच्चे खुद ब खुद इन्हें याद करते और गुनगुनाते हैं। ऐसी कविताएं, जाहिर है, उन रंग-बिरंगे खिलौनों की तरह हैं बच्चे जिनसे खेलते और आनंद लेते हैं। इस खेल-खेल में वे अपनी समूची दुनिया बसा लेते हैं। इस तरह की कविताओं से खेलते-खेलते बच्चे

सीखते भी हैं, लेकिन वे सिखाने वाले अंदाज में नहीं लिखी जातीं और कोई संदेश उनमें हो, तो वह छिपा हुआ ही रहता है।

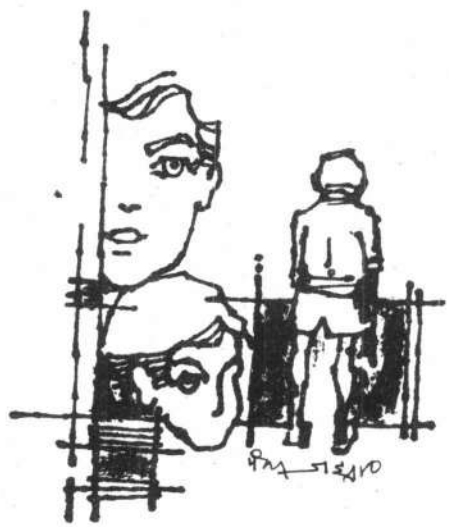
पिछले कुछ दशकों में दामोदर अग्रवाल, बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग, श्रीप्रसाद, योगेंद्रकुमार लल्ला, बालकृष्ण गर्ग, प्रयाग शुक्ल जैसे कवियों ने इस तरह की खिलंदड़ी कविताएं लिखकर धूम मचा दी थी और आज भी वे कम या ज्यादा, लिख ही रहे हैं। शेरजंग गर्ग की कविताओं में यह नटखट शरारतीपन सबसे ज्यादा है और उसकी कुछ महीन शक्लें उनकी कविता में अब भी नजर आ जाती हैं। 'भालू की बीमारी' में अपने मोटेपन से आजिज आए भालू की बीमारी के साथ-साथ अस्पताल का पूरा वातावरण है : *सीधा अस्पताल जा पहुंचा /भालू जब बीमार पड़ा /मोटापे के मारे उसका /बना हुआ था पेट घड़ा /अस्पताल में, बड़े ध्यान से/उसका रोज इलाज हुआ /थोड़ा मोटापन घट जाए / सबने मांगी यही दुआ।* और उसके बाद निदान कुछ यों हुआ कि : *कई दिनों तक पड़ा रहा यों/ अस्पताल में भालू बंद/ डाक्टर जी ने तुरंत कर दिए/ उसके चीनी आलू बंद।*

दामोदर अग्रवाल के गीतों में 'धूप खिले दिन' का-सा बड़ा ही मोहक विस्तार है। उनके गीतों में मानो कोई जादू की-सी लय है और शब्द उनकी उंगलियों पर नाचते फिरते हैं। उनकी 'बांकी-बांकी धूप' में जिंदगी का अनकहा उल्लास जैसे फूट पड़ा है : *खिड़की ज्यों ही खुली कि आकर /अंदर झांकी धूप / आकर बैठ गई सोफे पर/ बांकी-बांकी धूप /बैठ मजे से लगी पलटने /रंग-बिरंगे पन्ने /पलट चुकी तो बोली-आओ /चलो पकाएं गन्ने /और पकाने लगी ईख को /फांकी-फांकी धूप।*

बालस्वरूप राही, बालकृष्ण गर्ग और श्रीप्रसाद भी हिंदी के वरिष्ठ बाल कवियों में से हैं जो एक लंबे अरसे से लिखते आ रहे हैं। इनमें श्रीप्रसाद की इधर की कविताओं में पहले जैसी ताजगी नहीं है और वह खुद को दोहराते भी रहते हैं फिर भी वह कभी-कभी कुछ नया भी जरूर कह जाते हैं। मसलन 'तुम नहीं कहां' में हवा की यह चाल और ताल कुछ अलग-सी है : *चलो हवा, भर दो पेड़ों को/ नाचें, झूमें, गाएं वे/ बैलों के पैरों में लिपटो / रह-रह चक्कर खाएं वे...*

बालकृष्ण गर्ग के यहां नाटकीयता ज्यादा है और 'ऊधमबाजी की आजादी' भी। वह कविता बुनते हैं तो एक नन्हे-से बच्चे की यह नन्ही-सी शिकायत भी नहीं भूलते कि : *नए खिलौनों का कर वादा /रोज भूल जाते हैं दादा। /जब तक हैं हिमायती दादी /ऊधमबाजी की आजादी / पर चाची हैं काफी अच्छी /बच्चों में बन जातीं बच्ची। /पड़ता जब चाचा से पाला /हो जाता सब गड़बड़झाला।*

वरिष्ठ कवयित्री शांति अग्रवाल भी अक्सर पुराने परिचित रास्तों को छोड़कर नई लीक की ओर बढ़ती रही हैं। इसके लिए वह कई बार लोकगीतों की-सी सादगी और शब्द-क्रीड़ा का भी इस्तेमाल करती हैं। इसीलिए उनकी बाल कविताएं खेल-खेल में सजीव चित्र खींच देती हैं,



रेखांकन : पंकज झा

जैसे- 'कद्दू की बरात' में : *कद्दू जी की चली बरात /हुई बताशों की बरसात /बैंगन की गाड़ी के ऊपर /बैठे कद्दू राजा /शलगम और प्याज ने मिलकर /खूब बजाया बाजा।*

इसके अलावा पुरानी पीढ़ी के वरिष्ठ कवियों में शकुंतला सिरोठिया, कमला ओबेराय, कन्हैयालाल मत्त, कृष्णकांत तैलंग, आरसीप्रसाद सिंह, श्रीनाथ सिंह, रामेश्वरदयाल दुबे, नारायणलाल परमार, चंद्रपालसिंह यादव 'मयंक', मधुर शास्त्री, बाबूराम शर्मा विभाकर, बालकृष्ण गर्ग, गोपीचंद श्रीनागर, द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, दिग्गज मुरादाबादी, विनोदचंद्र पांडेय 'विनोद' तथा राजनारायण चौधरी और रमेश कौशिक की कई अच्छी कविताएं गुजरे बरसों में पढ़ने को मिलती रही हैं। इनमें द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, श्रीनाथ सिंह, आरसीप्रसाद सिंह और कृष्णकांत तैलंग तो अब स्मृतिशेष हैं, लेकिन यह कम रोमांचक नहीं है कि वे अंत तक सक्रिय रहे और बच्चों की दुनिया से जुड़े रहे।

इसके बाद की पीढ़ी में, जिसने खासकर नवें दशक में अपनी पहचान बनाई है- रमेश तैलंग, कृष्ण शलभ, दिविक रमेश, श्याम सुशील, रमेश आजाद, सुरेश विमल, हरीश निगम तथा सूर्यकुमार पांडेय उन कवियों में से हैं जिनके शब्दों की जादूगरी हमें मोह लेती है।

कृष्ण शलभ की इस तरह की कई खिलंदड़ी कविताएं मुझे याद आ रही हैं। इनमें 'बोल समंदर' एक अलग ढंग की खूबसूरत बाल कविता है जो समंदर का एक गूंजदार, विराट बोध बच्चे के मन में जगा देती है। समंदर और बच्चे का एक प्यारा-सा खेल यहां शुरू हो जाता है और बच्चे मजे-मजे में समंदर से उसका राज पूछने लगता है : *बोल समंदर सच्ची सच्ची/ तेरे अंदर क्या/ जैसा पानी बाहर/ वैसा ही है अंदर क्या?* फिर मछलियों के 'घर' और 'डर' की बातें होती हैं और इस राज की भी कि- *तुम सूरज को बुलवाते हो /भेज कलंदर क्या?*

रमेश तैलंग ने बाल गीतों को एक नई लयकारी, बालसुलभ चंचलता, मासूमियत और तरन्नुम से जोड़ दिया है। अपनी बाल कविताओं में वह बच्चे के कौतुक और जिज्ञासा के एकदम सटकर खड़े नजर आते हैं। उनकी 'एक चपाती' दिलचस्प कविता है जिसमें 'ताती ताती एक चपाती' तरह-तरह के बहानों और चतुराई से खुद को बिल्ली मौसी से बचा लेना चाहती है : *ताती ताती एक चपाती /दिखी तवे पर पेट फुलाती /बिल्ली मौसी बोली, म्याऊं /भूख लगी, मैं तुझको खाऊं /सुनकर उछली दूर चपाती /बोली फिर आंखें मटकाती /मौसी पहले मक्खन ला /फिर चाहे मुझको खा जा!*

दिविक रमेश जिस विषय को भी उठाते हैं, उसमें जान डाल देते हैं। उनके 'डाल-डाल, पात-पात' गीत में नन्ही-सी चिड़िया की नन्ही-सी चिट्ठी का एक मजेदार चित्र है : *नन्ही-सी चिड़िया*

जो/ नन्हे-से पंजे से/ नन्हा-सा खत लिखती/ नन्हे-से कागज पर/नन्हे-से शब्द जड़/उत्तर की आशा में/ क्या लिखती जाने वह/ नन्ही-सी चिट्ठी में! दिविक ने चिड़िया पर अलग ढंग की बहुत-सी अच्छी कविताएं लिखी हैं।

यश मालवीय, श्याम सुशील, सुरेश विमल और रमेश आजाद ने भी कुछ अलग अंदाज की दिलचस्प बाल कविताएं लिखी हैं, जिनमें कल्पना की खासी उड़ान है। यहां बच्चे की दुनिया से रिश्ता एकदम सीधा और सहज है और बड़े-छोटे वाली दीवारें भी खत्म हो गई हैं। लिहाजा उपदेश का यहां कोई काम नहीं। यह कहीं ज्यादा एक मिले-जुले सुख की दुनिया है जहां एक मुक्त खेल अनवरत चलता है। जैसे यश मालवीय की 'हिरन कहे' *कविता में : हिरन कहे हाथी से,भैया/ सुबह लगाओ दौड़/ दुबले होकर पहुंचो छिन में/ दिल्ली से चित्तौड़!*

यही बांकपन श्याम सुशील की कविता में एक अलग अंदाज में उभरता है, जिसमें एक बच्चे का घरेलूपन और मम्मी-पापा के साथ प्यार की एक पूरी दुनिया बसी हुई है। 'पापाजी की चिट्ठी' श्याम सुशील की एक नायाब कविता है जो एक बार होठों पर चढ़ने के बाद उतरने का नाम नहीं लेती : *चिट्ठी आई, चिट्ठी आई /पापा जी की चिट्ठी आई /बड़े दिनों के बाद /याद पापा को अपनी बिट्टी आई!*

सुरेश विमल के यहां अधिक कोमल, कमनीय और प्रगीतात्मक दुनिया है, जिसके बारे में उनका कहना है- *बसी प्यार की खुशबू इसमें/ रंगों का है ओर न छोर!*

रमेश आजाद के यहां गंवई या कस्बाई जीवन की झांकियां ज्यादा हैं और 'दादी का जन्मदिन' जैसी उनकी कविताएं हमें अजब-से कौतुक से भर देती हैं। यहां समय के परिचित पैमाने और तिथियां पीछे छूट जाती हैं और दादी अपनी नायाब किस्सागोई वाली भाषा में अपने जन्म के बारे में बताती हैं कि उस साल सूखा या बाढ़ आई थी और न जाने क्या-क्या हुआ था। कविता के अंत में बच्चों द्वारा दादी के जन्मदिन पर मिल-जुलकर पैसे इकट्ठे कर हुक्का भेंट करने का इरादा एकदम निराला है।

शताब्दी के अंत की बाल कविताओं में जो टटकापन और ताजगी है, उसे किसी आकस्मिक मोड़ की बजाय बाल कविता में नैरंतर्य की उपलब्धि के रूप में देखा और समझा जाना चाहिए। सच तो यह है कि लगभग हर दौर में ढेरों मामूली किस्म की बाल कविताओं के बीच कुछ न कुछ ऐसी असाधारण बाल कविताएं जरूर लिखी जाती रही हैं जो समय से होड़ लेती हुई, अपने समय का इतिहास भी रचती रही हैं। आज लीक से हटकर जो बाल कविताएं हमारे सामने हैं, उनकी परंपरा को रेखांकित करना कठिन काम नहीं है और गंभीरता से यह प्रयास किया जाना चाहिए। और उम्मीद है कि यह काम किया गया तो हम श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर और विद्याभूषण विभु, स्वर्ण सहोदर तक पहुंचेंगे।

बहरहाल, इन दिनों लिख रहे बाल कवियों में गोपीचंद श्रीनागर, देवेंद्र कुमार, राष्ट्रबंधु, राजा चौरसिया, राजनारायण चौधरी, प्रयाग शुक्ल, सूर्यभानु गुप्त, रोहिताश्व अस्थाना, चंद्रपालसिंह यादव 'मयंक', नारायणलाल परमार, विश्वनाथ गुप्त, बाबूराम शर्मा 'विभाकर', इंदिरा परमार, पद्मा चौगांवकर समेत कई प्रमुख कवि हैं जो अरसे से लिख रहे हैं, लेकिन अभी तक पुराने नहीं हुए। उनकी सभी कविताएं तो अच्छी नहीं हैं, पर बीच-बीच में उन्होंने ऐसा जरूर लिखा है जो मन को ताजगी से भर जाता है। गोपीचंद श्रीनागर अक्सर पारंपरिक और पारिवारिक माहौल के विषय उठाते हैं और उन्हीं में कुछ नया कह जाते हैं। मसलन 'दीदी की शादी' में शादी के उत्साह और रेलफेल का क्या कमाल का चित्र है : *दीदी दिल्ली जाएगी, छोटू ढोल बजाएगा/ दीदी जी की शादी में, डोली पर बिठलाएगा।* और फिर : *पापा पापड़ परसेंगे, बाबा बर्फी लाएंगे / सभी बराती शादी में छक-छक भोग लगाएंगे/ मेरे जीजा घोड़ी पर साफा बांधे आएंगे/बाजे वाले कुछ आगे मीठी तान लगाएंगे।*

ऐसी ही बला की सादगी, शरारत और कौतुक देवेंद्र कुमार की 'पड़ोसिन' कविता में है। और कुछ मामूली-से शब्दों से यह दुर्लभ कैरीकेचर उपस्थित करके देवेंद्र एक साथ अपने शब्द-लाघव, बालमन की समझ और उस्तादाना कौशल का परिचय देते हैं : *बड़-बड़ बड़-बड़ करे पड़ोसिन /अम्मी जी हैरान हैं। बिना काम ही घर में आएं /जो मन चाहे वह ले जाएं /उनकी बड़-बड़ सुनते-सुनते /पके हमारे कान हैं।*

इधर छपी कविताओं में राष्ट्रबंधु की 'टिली-लिली' भी एक मजेदार कविता है। ऐसी कविता जो अचानक बच्चों के होंठों पर चढ़ जाती है और उन्हें कल्पना की एक लंबी उछाल दे देती है। इसमें ढपोरशंख, परियां और न जाने कौन-कौन से किस्से-कहानियां, अलाय-बलाय और ताक-धिना-धिन की मस्ती शामिल होती चली जाती है : *मैं ढपोर हूं शंख बिना /ताक-धिना-धिन ताक-धिना /मुझे अचानक परी मिली /आसमान में जुही खिली /टिली-लिली/ मैं जाऊंगा पंख बिना /ताक धिना-धिन ताक-धिना।*

राजा चौरसिया और राजनारायण चौधरी अरसे से बच्चों के लिए लिखते आ रहे हैं और उनकी लिखी बहुत-सी बाल कविताएं अच्छी बाल कविता के उदाहरण के तौर पर पेश की जा सकती हैं। राजा चौरसिया की उत्सुक नजर बच्चे के मन में जन्म ले रही उमंगों की उस नदी पर रहती है जो देखते ही देखते फैलती और बढ़ती चली जाती है। उनके गीत 'मैंने चित्र बनाया' में एक कलाकार बच्चे का मन उमग-उमग पड़ता है : *पर्वत से जो निकल रही है/ मैदानों में मचल रही है / कल-कल करती हुई नदी का/ मैंने चित्र बनाया तो!*

ऐसे ही राजनारायण चौधरी की 'मने जन्मदिन' में एक बच्चे की उमंग और उत्साह फूट पड़ा है : *नए-नए कपड़ों में नन्हा राजकुंवर मैं लगता / दिल में रह-रहकर खुशियों के घुंघरू-सा है बजता/ लगे आज घर-आंगन में भी सुमधुर स्वर है छेड़ा।* आगे जन्मदिन के भारतीय माहौल का जिक्र है, जिसमें 'कुंकुम रोली का टीका' भी शामिल है : *कुंकुम-रोली का टीका /मेरे माथे पर सोहे /रंग-बिरंगी लटकी झालर /सबके मन को मोहे /दे-दे मुझे बधाई सबने /चूमा माथा मेरा!*

इसी तरह धीमी-धीमी मद्धिम चाल से चलती प्रयाग शुक्ल की कविताओं, खासकर शिशुगीतों की सादगी की अलग छाप पड़ती है और सूर्यभानु गुप्त की चुस्त-चुटीली कविताएं एक अलग जमीन रचती नजर आती हैं। हालांकि दो विपरीत ध्रुवांतों पर स्थित ये दोनों कवि बाल कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं और उनकी अपनी-अपनी खासियतें अब भी उनकी इधर की कविताओं में पहचानी जा सकती हैं।

बीसवीं शताब्दी के अंत की बाल कविता में ऐसे कवियों की संख्या काफी बड़ी है, जिन्होंने बच्चों के लिए निरंतर तो नहीं लिखा, लेकिन बीच-बीच में जब भी लिखा है, अपने सार्थक और सृजनात्मक हस्तक्षेप से बाल कविता को एक नए रंग-ढंग और उल्लास के जोड़ा। इन कवियों में ज्योतिप्रकाश सक्सेना, श्यामसुंदर घोष, अमरनाथ श्रीवास्तव, रामानुज त्रिपाठी, मोहम्मद फहीम, अश्वघोष और वीरेंद्र शर्मा के नाम तत्काल याद आ रहे हैं। इनमें से ज्यादातर कवियों के बालगीत बच्चों के मन और जिज्ञासा से एकदम सटकर चलते हैं। ज्योतिप्रकाश सक्सेना ने बच्चों के लिए ज्यादा नहीं लिखा है, लेकिन उनकी कुछ बाल कविताएं कमाल की हैं। 'कहीं घूम आओ' कविता में 'इत्ती-सी बात' पर 'इत्ता-सा गुस्सा' दिखाने वाले बच्चे को समझाने का उनका अंदाज तो देखिए : *इत्ती-सी बात पर, इत्ता-सा गुस्सा! /क्या हुआ जो मम्मी ने तड़के ही जगा दिया /उठते ही पापा ने कमरे से भगा दिया। /चाचा ने चिज्जी से मांग लिया हिस्सा!*

श्यामसुंदर घोष 'दादी नानी' कविता में हमें झक्की बुढ़िया से मिलवाते हैं जो बच्चों को कथा-कहानी ही नहीं सुनाती, जरूरत पड़ने पर उन्हें पैसे भी देती है और जी भरकर दुलारती है : *झक्की बुढ़िया, कुबड़ी-कानी /लेकिन नहीं करो शैतानी /वह भी तुम जैसे कितने ही /बच्चों की है दादी-नानी /उसके भी हैं पोते प्यारे / उसकी एक आंख के तारे /रोज सुनाया करती है वह /उन्हें प्यार से कथा-कहानी।*

विजयकिशोर मानव एक नवगीतकार के रूप में चर्चित हैं। पर बच्चों के लिए कुछ अनूठी कविताएं भी उन्होंने लिखी हैं। *ऊंची चिमनी, छोटे घर / हमने देखा एक शहर* जैसी सधी हुई लय से अक्सर वह खेल-खेल में जीवन के कुछ बड़े प्रामाणिक चित्र आंख के आगे खड़े कर देते हैं। इसी तरह अमरनाथ श्रीवास्तव की कथात्मक कविताएं ध्यान खींचती हैं। 'छोटू चूहा' में वह कुछ शरारती चूहों को पेश करते हैं जो बिल्ली के मुंह में लगी 'उजली-उजली' मलाई को देखकर अपने लालच पर काबू नहीं कर पाते और फिर : *सोच रहे बिल्ली के मुंह तक, कैसे पहुंचा जाए/ सोई बिल्ली जाग गई तो, अपनी नहीं भलाई।*

मजे की बात यह है कि बच्चे तन से छोटे भले ही हैं, मगर वे मन से बड़े हैं और एक छोटी-सी दुनिया में सिकुड़कर नहीं रहना चाहते। जब भी उन्हें मौका मिलता है वे 'पंखयुक्त हृदय' से अपनी दुनिया को फैलाते हैं और उसमें बहुतों को शामिल कर लेते हैं। ममलन दिल्ली वाले चाचा जी छुट्टी लेकर घर आते हैं तो बच्चों की दुनिया को नया विस्तार मिल जाता है। मोहम्मद फहीम ने 'दिल्ली वाले चाचा जी' कविता में इस बात को खूबसूरती से कहा है। बाहर से कोई आए और उनके लिए उपहार लेकर आए, तो बच्चों का मन लहराने लगता है : *छुट्टी लेकर आए हैं घर/दिल्ली वाले चाचा जी/ हंसने वाली गुड़िया लाए/ चाबी वाला बाजा भी/चाचा जी लेकर जाते हैं/ रोज हमें बाजार घुमाने/ ला देते हैं टाफी-बिस्किट/ खुशी-खुशी हम लगते खाने।*

बच्चों को सिर्फ टाफियां ही अच्छी नहीं लगतीं, टाफी वाले पेड़ की कल्पना भी गुदगुदा जाती है। नरेंद्रप्रताप सिंह इसीलिए बच्चों की दुनिया का यह नया 'घोषणापत्र' जारी करते हैं : *सड़क किनारे हर बस्ती में / टाफी वाले पेड़ लगेंगे / जादू वाले नए खिलौने / हर बच्चे को मुफ्त मिलेंगे / नया नया आदेश यही है / बात तुम्हें बतलानी!*

शुरू से ही बच्चों के लिए लिखी जा रही कविताओं में ऐसी कविताओं की संख्या काफी है, जिनमें बच्चे कल्पना की तरंगों पर सवार होकर कभी हाथी बनते हैं तो कभी खरगोश, कभी तोता तो कभी गौरैया। ऐसी कविताओं के साथ बच्चों का शायद सीधा तादात्म्य होता है। इधर लिखी जा रही कविताओं में भी ऐसी कविताओं की संख्या काफी है। इनमें कुछ बासी और घिसी-पिटी भी अब लगने लगी हैं। लेकिन बीच-बीच में कुछ बढ़िया कविताएं भी देखने को मिलती हैं। रामानुज त्रिपाठी की ऐसी ही एक कविता है : 'मैं हाथी होता' और हाथी होने पर बिरजू दादा की मोटर को खींच ले जाने के समेत और क्या-क्या हो सकता था, इसे आप इस कविता में ही पढ़िए : *कहीं सोचता हूं मैं मन में / अगर कहीं मैं हाथी होता / बिरजू दादा की मोटर को /दूर खींच ले जाता / पकड़ सूंड से मोटेमल को / ऊपर खूब उठाता / बैठाकर तब उन्हें पीठ पर / गुपचुप उनके घर तक छोड़ता !*

इसी तरह सीमा यादव 'अगर मैं खरगोश होता' में एक मजेदार कल्पना करती हैं कि : *सुबह-सुबह मैं उठता सोकर/ फिर अंगड़ाई लेता/ अपने लंबे कानों को मैं/ रगड़-रगड़कर धोता।*

पीयूष वर्मा इससे भी कुछ आगे जाकर इस कल्पना में डूब जाते हैं कि 'अगर नहीं मैं होता' तो फिर क्या-क्या होता और क्या-क्या न होता। यह सचमुच एक अच्छी और दिलचस्प रचना है और इधर की कुछ बेहतरीन कविताओं में इसे शामिल किया जाना चाहिए : *इस बेढंगी-सी दुनिया में / अगर नहीं मैं होता/ सोचो, दुनिया कैसी लगती/ और मेरा क्या होता/ अध्यापक तब कक्षा में/ मुर्गा किसे बनाता/ और बनाकर मुर्गा किससे/ कुकड़ूं-कूं करवाता/ मां किसके तब कान खींचती/ पापा किसको गुस्साते/ दादा-दादी किसे प्यार से/ अपने पास बुलाते/ लिख-लिखकर तब कौन सैकड़ों/ पन्ने काले करता/ इन पन्नों से संपादक का/ दफ्तर कैसे भरता !*

सच तो यह है कि इधर की बाल कविताओं में मानो यह होड़ लगी है कि वे इधर-उधर के तमाम बनावटी बंधनों से आजाद होकर और उपदेश-संदेश आदि-आदि का सारा भार उतारकर एकदम हल्की-फुल्की होकर बच्चों के एकदम नजदीक आ जाएं। लिहाजा आज की बाल कविताओं में एक गजब की अनौपचारिकता है। उषा यादव 'नई कहानी' में बच्चे की कहानी सुनने की जिद को अपने अंदाज में कहती हैं : *मां, तुम और सुनाओ कहानी/ रोज यही कहती हो मुझसे/ बेटा, यह कैसी जिद ठानी/ बहुत काम है तनिक न फुर्सत/ नल से भरना सारा पानी/ आज काम को मारो गोली/ कल भर लेना पानी वानी।*

कमला ओबेराय की कविता में बच्चा कुछ ज्यादा नटखट है और स्कूल से बचने के लिए बहाने गढ़ता है : *नटखट-नटखट कहती अम्मां/ किससे जी बहलाएगी/ जब मैं पढ़ने जाऊंगा मां/ किसको गोद बिठाएगी?* इतने भोले बहाने गढ़ने के बाद वह ममतालु मां की उच्छल छवि भी अपने जल्दबाज शब्दों में आंकता है : *फिर जब पों-पों करती मेरी/ बस नुक्कड़ पर आएगी /तब तू दौड़ी-दौड़ी अम्मां /पहुंच वहां झट जाएगी /आ गए बबलू , आ गए राजा /कहकर मुझे बुलाएगी!*

सचमुच बच्चे की दुनिया की मुश्किलें और सुख-दुख भी निराले हैं। उन्हें बच्चा बनकर ही समझना होता है। हरि मृदुल एक भोले बच्चे

की इस मुश्किल की तरफ हमारा ध्यान खींचते हैं कि उसका छोटा दिमाग बड़े-बड़े रिश्तों के बड़े से उलझाव को भला कैसे समझे? वह अक्सर बातचीत वाला अंदाज ही अपनाते हैं : *मेरे पापा के पापा, कहलाते हैं दादा / क्यों दादा ही कहलाते हैं, पता नहीं ज्यादा/ मेरी मम्मी की मम्मी, कहलातीं क्यों नानी/ रिश्ते कैसे बनते हैं, मुझको है हैरानी।* इसके बरक्स जहीर कुरैशी के यहां एक बच्चे की सबसे मजेदार मुश्किल उसका सपना है, क्योंकि : *पापा बबलू, बबलू पापा बन जाते हैं सपने में...!*

हिंदी बाल कविता में मौसम को लेकर शायद सबसे ज्यादा रद्दी और रूटीन कविताएं लिखी गई हैं, जिन्हें बेशक 'कूड़-कबाड़' की संज्ञा भी दी जा सकती है। कोई भी नया मौसम आते ही कवि मानो किसी ऊंचे टीले पर खड़ा होकर गुहार लगाने लगता है– 'सर्दी आई, गर्मी आई, बारिश आई...' वगैरह। इस तरह की कविताओं ने हिंदी बाल कविता को बड़ी हास्यास्पद स्थिति में ला दिया है।

लेकिन ऐसा नहीं कि मौसम को लेकर अच्छी कविताएं लिखी ही न जा सकती हों या लिखी ही न जा रही हों। हर क्षण रंग बदलता हुआ मौसम निश्चय ही बाल कविताओं के लिए एक उम्दा विषय है और उसे लेकर अच्छी कविताएं भी निस्संदेह लिखी जा सकती हैं, लिखी जा रही हैं। अहद प्रकाश की 'छुपन छुपैया' कविता में जाड़े का एक प्रभावशाली चित्र है। सिकुड़ी बैठी सोनचिरैया, बंदर भैया की कंपकंपी जैसी तमाम रोचक झलकियों में जाड़ा हमें लुभाता है : *ताक-धिना-धिन मारे भैया जाड़े में/ चट कर भागी दूध बिलैया जाड़े में/ सिकुड़ी बैठी सोनचिरैया जाड़े में/ कांप रहे हैं बंदर भैया जाड़े में/ अटकुल मटकुल हिरन के बच्चे देखे दो / खेल रहे हैं छुपन छुपैया जाड़े में।*

हरीश निगम लू का एक बढ़िया चित्र खींचते हैं, जिसमें हल्की-सी प्यार-भरी छेड़छाड़ भी है : *ओ री लू/ इतना गुस्सा/ क्यों है तू/...ले-ले दम/ बहुत कर चुकी/ तू ऊधम?*

गरमी में धूप दुश्मन लगती है तो सर्दी में वही सुख देती है। महेश शुक्ल सर्दियों में छत पर बैठ, धूप खाने की दावत देते हैं, तो कृष्णकांत तैलंग ऐसे 'जादुई समय' की कल्पना में खो जाते हैं जिसमें सभी मौसम एक साथ आते हैं। बादल सूरज की अकड़ भुला देता है। और असली मजा तो तब आता है, जब ऊनी कपड़े पहने हमें बारिशों का सामना करना पड़ता है : *जाड़ा पानी दोनों घुल-मिल /लाते सब पर भारी मुश्किल /घर के बाहर लोग निकलते ले बरसाती, छाता चलते /ऊनी कपड़े पहने रहते /मौसम की मनमानी से!*

यहां यह जिक्र करना भी जरूरी है कि हिंदी में चाहे मौसम को लेकर ढेरों मामूली कविताएं लिखी जाती रही हों, पर समय के साथ-साथ चित्ताकर्षक ढंग से रंग बदलता मौसम अच्छी कविताएं लिखने के लिए हमेशा एक संभावना है– और वह बना रहेगा!

आज की निरंतर बदलती हुई दुनिया में बाल कविता के लिए नित नए विषय तलाशने की जरूरत भी इधर के बाल कवियों ने महसूस की है। वे न सिर्फ नए से नए विषयों पर कविताएं लिख रहे हैं, बल्कि उन विषयों को बाल कविता के कोमल और चंचल परिदृश्य में खींच लाने के लिए उन्हें नित नई कल्पनाओं से सजा-संवार रहे हैं। इन नए विषयों में टी.वी. है, दूरबीन है, रोबोट है, कंप्यूटर है, 'बात कराता टेलीफोन' है। यहां तक कि पर्यावरण की चिंताएं भी हैं।

रामानुज त्रिपाठी 'छोटे परदे पर' उभरते उस गतिमान संसार की बात करते हैं, जो चाहे मात्र चित्रांकन ही है, पर एकदम सजीव लगता है : *यह है अपना टी.वी./ इसके छोटे परदे पर / कभी दिखाई देते जंगल /कभी दिखाई देते खेत/ कभी दीखता बड़ा मरुस्थल/ दूर-दूर तक फैली रेत/ कभी समंदर लहराता है/ नदियां बहती हैं हर-हर!*

वरिष्ठ कवि आरसीप्रसाद सिंह (अब दिवंगत) भी 'खेल तमाशा' कविता में बच्चे के मन में उठते इस कौतुक भरे सवाल से उलझते हैं कि आखिर एक छोटे से परदे पर हाथी, बंदर, भालू कैसे आ जाते हैं। उनके 'लालू जी' का जरा यह भोलापन तो देखिए : *टी.वी. के पीछे छिप-छिपकर/ देख रहे हैं लालू जी/ परदे पर कैसे आ जाते/ हाथी, बंदर, भालू जी/ कोलंबो से आया कोई/ जंबो सर्कस भालू जी/ खेल-तमाशा, दूध बताशा/ लाया जोकर कालू जी।*

रामवचन सिंह 'आनंद' उस टेलीफोन का 'सुरीला' चित्र बालमन के कैनवस पर उकेरते हैं, जो बिना तार ही लंदन और याकोहाया से बात करा देता है : *बजी सुरीली घंटी/ देखो तो जा बंटी/ कौन कहां से बोल रहा/ किसे बुलाता टेलीफोन/ दिल्ली , रोम, पनामा/ लंदन-याकोहाया/ नंबर मिला, सुनो तो जी/ बात कराता टेलीफोन।*

और अब तो हालत यह है कि टेलीफोन और दूरदर्शन भी पुरानी चीजें लगने लगी हैं और हम 'कंप्यूटर युग' में आ गए हैं। यह कंप्यूटर युग चलते-फिरते 'यंत्र-मानवों' का है, जिन्हें हम 'रोबोट' कहते हैं। भला इतनी मजेदार कल्पना बाल-कविता में आने से कैसे रह जाएगी! लिहाजा रोबोट पर कई बढ़िया कविताएं लिखी गईं। शिवनारायण मिश्र अपनी एक सरस और कौतुकपूर्ण कविता में इंसानों जैसे चलते-फिरते यंत्र-मानव रोबोट की बात करते हैं, जो काम तो नौकरों-सा करता है, पर कभी सोता नहीं। और सिर्फ यही नहीं : *कंप्यूटर उसका दिमाग है /हाथ-पांव संचार में /कहते हैं रोबोट उसे /सब विज्ञानी संसार में /देकर मुझको टाफी-बिस्कुट गाएगा मीठा गाना /पापा! तुम भी ले आना।*

यह बाल मन की कल्पना ही है जो रोबोट के कंप्यूटरी दिमाग के साथ टाफी-बिस्कुट और मीठा गाना गाने की ललक जोड़ देता है। और तब वह रोबोट 'यंत्र-मानव' न रहकर कुछ-कुछ 'मानव' ही बन जाता है। मानो बच्चे ने न सिर्फ उसमें प्राण और चेतना डाली हो, बल्कि उसका जीवन भी उसे लौटा दिया हो! विनोद कुमार लाल की 'ऐसा रोबोट होता' भी रोबोट को लेकर ऐसी ही एक प्यारी कविता है। इसी तरह राकेट को लेकर कुछ बढ़िया कविताएं लिखी गई हैं। कृष्णकांत तैलंग की कविता में बच्चा अंतरिक्ष में उड़ने वाला राकेट खुद बनाना चाहता है : *मैं राकेट एक बनाऊंगा / उड़ अंतरिक्ष में / जाऊंगा...।* केशव कुमार दिवाकर की एक कविता चांद पर जाकर पिकनिक मनाने की दावत देती है और वहां परियों की भी चर्चा है। जोकर, सर्कस, चिड़ियाघर, गुड़ियाघर, अप्पूघर जैसे विषयों पर एक से एक अच्छी कविताएं लिखी गई हैं । इन कविताओं में कल्पना का स्फुरण भी खासा है और उत्फुल्ल लय है। शायद इसीलिए बच्चे बड़ी ललक के साथ इन कविताओं को पढ़ते हैं।

बहरहाल, इधर के बाल-साहित्य में कुछ अलग से विषयों पर लिखी गई ऐसी दिलचस्प बाल कविताएं लगातार पढ़ने को मिलती रही हैं- यह एक शुभ संकेत है। एक बढ़िया बात यह है कि बाल कवियों ने अपरिचित विषयों पर लिखी गई उन कविताओं को भी खासा रसात्मक बना दिया है, यहां तक कि 'प्रदूषण' जैसे खासे 'गद्यात्मक' विषय भी बाल कवियों की आंख से नहीं छूटे। दिग्गज मुरादाबादी की एक छोटी-सी कविता में बच्चा बड़े कौतुक के साथ पूछता है कि आखिर यह प्रदूषण है क्या चीज, जिस पर टी.वी. और अखबारों में इतनी लंबी चर्चा होती है। यह कविता एक दिलचस्प सवाल-जवाब के रूप में एक रूखे-से लगने वाले विषय को भी अच्छे ढंग से साधती है।

शताब्दी के आखिरी दौर के बाल-साहित्य में नए-नए विषयों पर बालगीत लिखने की मांग बहुत की गई और नए विषयों पर लिखा भी गया। फिर भी कुल मिलाकर देखा जाए तो नए विषयों पर लिखी गई कुछ गिनी-चुनी बाल कविताएं ही हमें मिलती हैं। सच तो यह है कि बालगीतों में नए विषयों की तलाश जरा मुश्किल काम है। इसलिए कि हमारे समकालीन जीवन में जो नई चीजें शामिल हो रही हैं, जो नए वैज्ञानिक उपकरण और सुविधाएं आ रही हैं, उन्हें हमारी चेतना का हिस्सा बनने में समय लगेगा। चूंकि वे हमारी सर्जनात्मक चेतना की हिस्सा नहीं बनीं, इसलिए उनके साथ हमारी रागात्मक कल्पनाएं भी नहीं जुड़ पाईं। इसलिए इन विषयों पर लिखी गई बहुत-सी कविताएं इतिवृत्तात्मक या फिर रूखे निबंधों जैसी भी हैं।

जाहिर है, नए-नए विषयों द्वारा नवीनता लाने का यह रास्ता न सिर्फ विरल, बल्कि दुष्कर भी है। लिहाजा ज्यादातर समर्थ कवियों ने एक रास्ता यह निकाला कि पुराने विषयों को 'नई आंख' से देखा-परखा और उनमें कुछ नई-नई और ताजगी भरी बातें कहीं। रमेश कौशिक की 'धरती' कविता में यही सर्जनात्मक कोशिश नजर आती है। अपनी कीली पर लट्टू जैसी नाचती हुई धरती का वह एक गंभीर, प्रभावपूर्ण चित्र आंकते हैं : *अपनी धरती, प्यारी धरती! /हुआ जन्म तेरा कब, कैसे /ठीक-ठीक कुछ पता नहीं है /कौन शक्ति से लट्टू जैसी /महाशून्य में घूम रही है /बीते वर्ष करोड़ों फिर भी /कभी नहीं थक-हारी धरती।*

चंद्रदत्त इंदु की 'एक थी गुड्डी' और 'अट्टू-बट्टू' कविताएं भी बहुतों को याद होंगी। इधर की एक कविता में वह हमें मेले-ठेले की दुनिया में ले जाते हैं और रात-रात भर जगते मेलों का यह आनंददायक दृश्य उपस्थित करते हैं, जहां बड़ा जोश और बड़ी भग्भड़ है : *अजब अनोखी लगी दुकान/ बिकता है सारा सामान/ ... गरम पराठे, हलुआ-पूरी/ बिन खाए है सैर अधूरी!*

पवन करण एक दूसरा तरीका अपनाते हैं। वह चुपके से मेला देखने गई गुड्डी के साथ हो लेते हैं और उसकी आंखों से पूरा मेला देखते हैं- *गुड्डी गई देखने मेला/ भीड़-भड़क्का, ठेलम-ठेला/ जोकर, जादू, मोटर-झूला/ दो रुपए में चक्की-चूल्हा।* बाबूराम शर्मा 'विभाकर' की 'बात' भी अनोखी कविता है जो बात-बात में बात आगे बढ़ाने का अजब-सा करतब प्रस्तुत करती है।

इधर ऐसी कई कविताएं देखने को मिलती हैं- और इनमें कुछ तो बहुत अच्छी हैं- जिनमें बच्चा छुट्टियां अपने ढंग से बिताना चाहता है। रमेशचंद्र पंत की 'नानी जी के गांव में' ऐसी ही एक खूबसूरत कविता है। ओमप्रकाश कश्यप की कविता में बच्चे के मन में छुट्टियों में घूमने आने की इच्छा है। पर उसकी एक अजब-सी मुश्किल यह है कि वह किधर जाए? हर कोई तो उसे अपनी ओर खींचना चाहता है। मगर उसकी 'जान अकेली' है : *सुनो-सुनो, इक बात बताऊं /कैसी अजब पहेली है /जिधर-जिधर मैं नजर घुमाऊं /सारी दुनिया मेरी है। /दादा जी पूरब में रहते /पश्चिम में मेरे नाना जी /दोनों ही चिट्ठी में लिखते /छुट्टी में घर आना जी /किस-किसके घर छुट्टी काटूं /मेरी जान अकेली है।*

बच्चों को शादी की चहल-पहल, बाजे-गाजे और धूमधाम भरा माहौल अच्छा लगता है, चकित भी करता है। पर जब मैना की शादी की बात हो, तब तो कहना ही क्या! शंभुलाल शर्मा 'वसंत' की एक कविता में बगिया-बगिया में कोयल मानो मैना की शादी की मुनादी ही कर देती है : *अमराई तो खूब सजी है/ मैना की है शादी/इसीलिए तो बगिया-बगिया/ कोयल करे मुनादी/ पकड़ी, सुग्गा, श्यामा, बुलबुल/ एक से एक चिरैया/ हंस-हंस मैना से बतियाएं/ संग में है गौरैया।*

प्रकृति की अनुपम छवियों को देखने-दिखाने में भी बाल कविता की एक जरूरी भूमिका है। और कुछ कल्पनाशीलता के साथ किया जाए, तो इसमें हमेशा कुछ न कुछ नया करने की गुंजाइश है। अश्वघोष पहाड़ का उत्सुक चित्र खींचने चलते हैं तो पहले ही यह स्वीकार कर लेते हैं कि : *अब तक हमने देखी बाढ़ /लेकिन देखा नहीं पहाड़।* फिर वह कुछ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ही पहाड़ को बड़े मानवीय, लेकिन कौतुकपूर्ण अंदाज में पेश करते हैं : *सुना, वहां परियां रहती हैं /कल-कल-कल नदियां बहती हैं /झरने करते हैं खिलवाड़ /और सुना है, लोग निराले /घर में नहीं लगाते ताले /हरदम रखते खुले किवाड़!*

ऐसे ही हवा के कुछ गतिमान बिंब इधर की बाल कविताओं में मिलते हैं। नीलिमा सिन्हा की नजरों में हवा एक पगली है जो जगह-जगह झाड़ू लगाती फिरती है और : *बाग-बगीचे, आंगन-बाड़ी सब बुहारती चलती है।* यह हवा जब खुश रहती है तो सुंदर गीत सुनाती है, लेकिन मौज में आने पर धमकाती भी है : *दरवाजे पर धक्के देती/ खिड़की भड़भड़ करती है/ पौधों की डालें झकझोरे /कभी नहीं यह थकती है।* अरविंद कुमार की 'किसने देखा' में भी हवा की राजसी शान और रोब देखने लायक है : *पेड़ जब शीश नवाते हैं /पात जब गौरव गाते हैं /हवा सिंहासन पर चढ़कर /सवारी लेकर आती है /हवा को सबने देखा है।*

चंद्रदत्त 'इंदु' की 'कोहरा' और रामवचन सिंह आनंद की 'छैंया रे' कविताएं भी प्रकृति की सुंदर, मनोरम छवियों को अनूठे अंदाज में व्यक्त करने की कोशिशें हैं।

बच्चों के खेलों के साथ खेलती हुई कविताएं लिखना भी बाल कवियों को शुरू से प्रिय रहा है। लेकिन इधर इनमें एक नया चुलबुला रंग और अनौपचारिकता नजर आती है। श्यामसुंदर घोष की 'खेल कबड्डी' ऐसी ही एक दिलचस्प कविता है। रामसेवक शर्मा की 'देशी खेल' भी खासी मजेदार है। इसमें कबड्डी प्रेमियों से अनुरोध किया गया है कि वे जगह-जगह से आकर 'दिल्ली की संसद' में यह मांग उठाएं कि कबड्डी को उसका पूरा

महत्व मिले।

वरिष्ठ कवि कन्हैयालाल मत्त ने भी खेलों पर ढेरों कविताएं लिखी हैं और वे सभी जिंदादिली से भरपूर हैं। उनकी *खेल तमाशा* और *बोल री मछली, कित्ता पानी !* संग्रहों की ज्यादातर कविताएं खेलों की उमंग और मस्ती को लेकर हैं और उनमें भारतीय परंपरा के खेलों को विशेष स्थान मिला है। उनकी 'गेंद-तड़ी' कविता में गेंद-तड़ी की पूरी भागमभाग और 'गरमी' है : *है कसरत दमदार बड़ी /गेंद-तड़ी, भइ, गेंद-तड़ी ! /भागो-भागो, हाथ न आओ /जमकर लंबी दौड़ लगाओ /पल भर रुके कि गेंद पड़ी /गेंद-तड़ी, भइ, गेंद-तड़ी!*

शायद क्रिकेट की लोकप्रियता का ही यह असर है कि क्रिकेट पर सबसे ज्यादा बाल कविताएं लिखी गई हैं। इधर हाल ही में सूर्यकुमार पांडेय की क्रिकेट पर लिखी गई एक ताजा कविता छपी है-'मां, मैं भी सचिन बनूंगा!' इसमें क्रिकेट का आनंद तो है ही, सचिन होने का 'क्रेज' भी है : *मां, मैं भी अब सचिन बनूंगा /मुझे गेंद-बल्ला दिलवा दो /पैंट-शर्ट सुंदर सिलवा दो /हेलमेट मेरे लिए मंगा दो /जूते और पैड मंग ला दो /मैं दिन भर जमकर खेलूंगा /मां, मैं भी अब सचिन बनूंगा !*

क्रिकेट की तरह हाकी और खो-खो पर भी कविताएं लिखी गई हैं, पर क्रिकेट की बात तो सचमुच निराली ही है।

पानी में कागज की नाव तैराना भी बच्चों का एक प्यारा खेल है। वैद्यनाथ पानी में बहती कागज की नैया को हमें एकदम बच्चों की आंख से दिखाते हैं : *नन्ही-सी नैया कागज की/ पानी में बहती जाती / इसमें छोटा दीप धरा है/ झिलमिल-झिलमिल है बाती।*

दरअसल बाल कविताएं हमारे 'प्रकृति दर्शन' का विस्तार ही हैं। वे हमें प्रकृति को नए-नए आत्मीय रंगों में देखना सिखाती हैं और उसकी मनोरम छवियां खोल-खोलकर हमारी आंख के आगे रखती जाती हैं। वीरेंद्र शर्मा एक झील के पास आकर पानी पीती हंसिनी को देखते हैं तो उसकी चोंच उन्हें 'लाल रंग का फूल' लगती है। यह कल्पना सचमुच बच्चों की दुनिया के बहुत पास की है। कविता की शुरूआत किस्से-कहानियों जैसे दिलचस्प ढंग से होती है : *रेतीले टीले के पास, एक झील है बहुत बड़ी/ बड़े चाव से पानी पीती /एक हंसिनी खड़ी-खड़ी... !*

एक अच्छा संकेत यह भी है कि इधर की बाल कविताएं जीवन के कुछ और नजदीक आई हैं। बढ़ई हो, रिक्शा वाला या सब्जी वाला- आज की कविता में वे ज्यादा प्रमुखता से आते हैं और हमें मेहनत का पाठ पढ़ाते है। विनोद शर्मा की कविता में बढ़ई बहुत 'सम्मानित' व्यक्ति है, क्योंकि वह 'आरी-रंदे का जादूगर' है। इसी तरह रिक्शा वाले, सब्जी वाले, ठेले वाले, चाट वाले, मिठाई वाले हलवाई, और जीवन की किस्म-किस्म की गतिविधियों से जुड़े लोगों पर इधर कुछ बढ़िया कविताएं पढ़ने को मिली हैं।

बच्चों को मजेदार चीजें और अनोखे लोग अच्छे लगते हैं तो भला मोटूमल की 'मटके जैसी तोंद' (सूर्यभानु गुप्त) उनसे कैसे छूट जाएगी? और यह अनोखा नजारा भी कि : *गाल कचौड़ी जैसे फूले, नैन नजर मुश्किल से आते/ हंसते है जब-जब मोटूमल, दोनों नैन बंद हो जाते... !*

कहना न होगा कि इस तरह की शोख और चंचल कविताएं बाल कविता के चित्रपट को नए-नए रंगों और छवियों से भरती रहती हैं। इनमें ऐसी कविताएं भी शामिल हैं जिनमें जीवन के 'गतिमान' और नाटकीय चित्र हैं। यानी किस्से-कहानियों के-से अंदाज में कोई बात शुरू होती है और किसी पूर्ण कथात्मक निष्पत्ति के साथ खत्म होती है। यह दीगर बात है कि ऐसी कथात्मक कविताएं गिनी-चुनी पंक्तियों में ही अपनी बात असरदार ढंग से कह डालती हैं। लक्ष्मीशंकर वाजपेयी की 'भोलू हाथी' कविता में मम्मी से डरे हुए भोलू हाथी और चींटी के एक बच्चे का संवाद है। कविता के अंत में चींटी का बच्चा डरे हुए भोलू हाथी को बड़ी प्रगल्भता के साथ आश्वस्त करता है : *तुम तनिक नहीं घबराना/ मम्मी के आते ही/ बस, मेरे पीछे छिप जाना।*

विनोद शर्मा की 'एक से बढ़कर एक' में गर्दभराज और सियारस्वामी का लंबा नाटकीय संवाद है। सियारस्वामी गर्दभराज के ढैंचू राग की भरपूर तारीफ करते हैं। बदले में भला गर्दभराज सियारस्वामी की तारीफ कैसे न करें! लिहाजा गर्दभराज ने कहा : *सुर सम्राट आप धन्य हैं / हम तो आपके भक्त अनन्य हैं।*

केशवकुमार दिवाकर की 'पिकनिक', यश मालवीय की 'हिरन कहे', शशि शर्मा की 'सपना आया', कृष्ण गोपाल रस्तोगी की 'उड़ा बेचारा', लक्ष्मीशंकर वाजपेयी की 'उड़नतश्तरी', सुयश मिश्र की 'बंदर की बंदूक', पवित्रा अग्रवाल की 'चिड़िया की भूख हड़ताल', शेरजंग गर्ग की 'राम बचाए', अमरनाथ श्रीवास्तव की 'छोटू चूहा' और 'बंदरमामा', रोहिताश्व अस्थाना की 'चंदा पर नाच' तथा डोमन साहू समीर की 'फूल और पत्थर' भी कुछ ऐसी ही दिलचस्प और गौर करने लायक कथात्मक कविताएं हैं।

कभी शेरजंग गर्ग और श्रीप्रसाद के शिशुगीतों की धूम थी और उनके जरिए हिंदी बाल कविता ने एक नई पहचान पाई थी। शेरजंग गर्ग के *रामनगर से राजा आए, श्यामनगर से रानी* जैसे शिशुगीतों की सरलता और 'गाय' को 'चाय' पिलाने जैसी मजेदार कल्पनाएं अब भी मन को गुदगुदाती हैं। पर आगे चलकर शिशुगीत उतने अच्छे नहीं लिखे गए। उनमें पहले जैसा 'हस्तलाघव' और कटाक्ष गायब होता चला गया, पहले जैसी उस्तादाना सफाई और शब्दों की जादूगरी भी। देखा जाए तो इस क्षेत्र में अब भी अनंत संभावनाएं हैं जिन्हें बिना अजमाए यूं ही छोड़ दिया गया है। फिर भी बीच-बीच में कुछ बढ़िया शिशुगीत नजर आ जाते हैं।

इधर छपे शिशुगीतों में खासकर दिग्गज मुरादाबादी, देवेंद्रकुमार देव और हरि मृदुल के शिशुगीतों में कुछ नयापन और ताजगी नजर आती है। देवेंद्रकुमार देव का आठ पंक्तियों का शिशुगीत 'आलू का परांठा' तो गजब का है : *देख परांठा आलू का /मन ललचाया भालू का /बोला हम भी खाएंगे /कुछ घर पर ले जाएंगे /कहे लोमड़ी ना-ना-ना /ये घर पर ले जाना ना /इतने सेक न पाऊंगी /खुद भूखी रह जाऊंगी।*

शिव अवतार रस्तोगी का 'मीठे बोल' भी एक छोटा-सा शिशुगीत है। इसमें मीठे बोल की महिमा है, पर उसे जमूरे और मदारी की बातचीत के अंदाज में रोचक ढंग से पेश किया गया है : *एक जमूरा सदा काम में /करता रहता टालमटोल /तन का थुलथुल, मन का कपटी /और गाल थे गोलमटोल /उसे*

मदारी ने समझाया /बजा-बजाकर अपना ढोल /बोला-झटपट काम किया कर /बोल सदा तू मीठे बोल !

हिंदी में पशु-पक्षियों पर लिखे गए शिशुगीतों की भी एक लंबी परंपरा है, ऐसे शिशु गीत- जिनमें बहुत-से एकदम चुस्त-दुरस्त और सधे हुए भी हैं- इधर की बाल कविता में भी पर्याप्त मिलते हैं। दिग्गज मुरादाबादी जब खरगोश पर लिखते हैं तो अपनी भाषा और शिल्प की सफाई के कारण अनजाने में ही उसे एक नया कलेवर दे देते हैं : *धुनी रुई के गोले जैसा/ मनमोहक खरगोश/ चाहे जितना इसे छेड़िए/ रहता है खामोश/ मन करता है, इसे गोद में/ लेकर खूब दुलारें/ अपने अलबम में रखने को/ इसका चित्र उतारें।*

यहां यह जिक्र करना अप्रासंगिक न होगा कि हिंदी में इन दिनों चलताऊ शिशुगीतों की बाढ़ आ गई है। छोटी कक्षाओं के बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में हड़बड़ी में लिखे गए ऐसे बेढंगे और आधे-अधूरे शिशुगीत ठुंसे हुए हैं। और ये ज्यादातर जानवरों पर ही लिखे गए हैं, लेकिन इन्हें शिशुगीत कहना 'शिशुगीत' का अपमान है। सच तो यह है कि शिशुगीत लिखना किसी भी कवि के लिए एक बड़ी सर्जनात्मक चुनौती है। इसलिए कि यह गिने-चुने और मामूली से शब्दों से एक बड़ा चित्र आंकने जैसा है। और फिर शिशुगीत की यह खासियत तो अपनी जगह है ही कि एक अच्छा शिशुगीत खुद-ब-खुद बच्चों के होंठों पर नाचता फिरता है।...और कई बार तो बड़े निरर्थक-से लगते शब्दों और ध्वनियों से रचे गए शिशुगीत भी एक समां-सा बांध देते हैं और उनमें वह जादू उभरकर आता है कि हम ठगे रह जाते हैं। मसलन प्रमोद लायटू का 'तक-तक-थैया' शिशुगीत, जो बड़ी ही उत्साहजनक लय में आगे बढ़ता है: *तक-तक थैया/ मेरे भैया/ सूखी नदिया/ हंसे तलैया...!*

बालस्वरूप राही के शिशुगीत भी काफी चर्चित रहे हैं। इधर भी उनके कुछ शिशुगीत छपे हैं। इनमें से एक शिशुगीत का शीर्षक 'कार' है। विषय पुराना है, पर राही इसे एक नई भंगिमा के साथ पेश करते हैं : *पापा जी की कार खड़ी है। नन्ही-मुन्नी मेरी कार! टांय-टांय फिस् उनकी गाड़ी/ मेरी कार धमाकेदार / उनकी कार धुआं फैलाती/ एक रोज होगा चालान/ मेरी कार साफ-सुथरी है। सब करते इसका गुणगान।* जाहिर है, बच्चे और बड़े की कार की तुलना न होती और बड़ों की कार बच्चों की कार के आगे 'फिस्' न होती, तो इस कविता का आनंद आधा रह जाता। *नंदन* संपादक जयप्रकाश भारती ने भी शिशुगीत लिखे हैं जिनमें ध्वनियों के अजब-से प्रयोग हैं। इनमें कुछ अच्छे हैं।

इसमें शक नहीं कि अभी भी हिंदी में अच्छे शिशुगीत लिखने की अपार संभावनाएं हैं, जिनका ठीक से उत्खनन तो हुआ ही नहीं, उनके महत्व और चुनौती को भी ठीक से समझा नहीं गया। उम्मीद है, नए कवि कुछ अधिक तैयारी के साथ इस क्षेत्र में काम करने के लिए आएंगे।

पिछले कुछ बरसों में बाल कविता की दुनिया में इतने नए कवियों ने दस्तक दी है और उनके जरिए बाल कविता में और ताजगी आई है- कथ्य और भाषा दोनों स्तरों पर यह खुद में एक चकित कर देने वाला तथ्य है, और एक शुभ संकेत भी। मजे की बात यह है कि इन नए आए कवियों में ऐसे कवियों की संख्या बहुतायत में है जो पहले भी साहित्य की किसी न किसी विधा में लिखते थे और खासे चर्चित भी थे। पर अब उन्होंने बच्चों के लिए लिखना पसंद किया। इन कवियों ने सिर्फ बच्चों के लिए लिखा ही नहीं है, बल्कि कुछ ऐसा लिखा है जिससे बाल कविता को अपना आगे की यात्रा तय करने में यकीनन कुछ मदद मिलेगी। इस लिहाज से अरविंद कुमार की 'किसने देखा', अश्वघोष की 'पहाड़', राजेंद्र मिलन की 'बाबा जी' और 'दो बैलों की जोड़ी', लक्ष्मीशंकर वाजपेयी की 'उड़नतश्तरी', श्याम सुशील की 'पापा जी की चिट्ठी', नीलिमा सिन्हा की 'पगली हवा' और उषा यादव की 'भारी बस्ता' कविताओं का खासकर जिक्र करना चाहूंगा। कहना न होगा कि ये कविताएं शताब्दी के आखिरी दौर की हिंदी बाल कविता की एक प्रमुख उपलब्धि भी हैं।

इसके अलावा जिन नए कवियों की अच्छी कविताएं गुजरे कुछ बरसों में पढ़ने को मिलती रही है, उनमें हरि मृदुल, सीमा यादव, अरविंद बख्शी, केशवकुमार दिवाकर, सुरेश सपन, पीयूष वर्मा, विनोद भृंग, विपुल कुमार, शिवनारायण मिश्र, मृदुला प्रधान, रामदुलार सिंह पराया, वीरेंद्र जैन, श्यामसुंदर श्रीवास्तव 'कोमल', शंभू झा, ओमप्रकाश कश्यप, पूनम भट्ट, सुनील जोगी, शंभुलाल शर्मा 'वसंत', किशोरकुमार कौशल, सूरजपाल चौहान, कुसुम अग्रवाल, रेखा राजवंशी, डोमन साहू समीर, विनोदकुमार लाल, सुयश मिश्र, निशा भार्गव, देवेंद्र कुमार देव, शिवअंबर रस्तोगी, चंद्रकांता विश्वकर्मा, लता पंत, योगेंद्रसिंह भाटी 'योगी', हरस्वरूप भंवर, चिन्मय कुलश्रेष्ठ तथा विजयानंद के नाम लेना चाहूंगा। हालांकि इन सभी कवियों की लीक से हटकर लिखी गई कुछ कविताएं जरूर पढ़ने को मिली हैं, पर इनमें कुछ तो निस्संदेह समर्थ कवि हैं और उनकी आगे की यात्रा काफी आश्वस्तकारी हो सकती है।

मजे की बात यह है कि इन सभी कवियों की शैली और कविता गढ़ने का अंदाज जुदा-जुदा है। फिर भी वे एक समय के कवि लगते हैं और समय उनकी कविता में दस्तक देता लगता है। मसलन किशोरकुमार कौशल बच्चों की दुनिया के कौतुक तक पहुंचने के लिए कबीर की उलटबांसी वाली शैली का सहारा लेते हैं- *पानी ऊपर रेल चले, आसमान पर खेल चले...* तो अरविंद बक्शी 'जादू के खेल' के रोमांच को छू आते हैं- *कल देखा जादू का खेल, आसमान पर उड़ी थी रेल...।* नई कवयित्री पूनम भट्ट कोमल लय में प्रकृति की सुंदरता का अनूठा चित्र आंकती है : *रोज सुबह किरणें अंबर के मुंह पर लाली देतीं मल!* और यही नहीं; वह सागर की छल-छल करते एक खूबसूरत कटोरे के रूप में कल्पना करती हैं। यह सौंदर्य-बोध रेखा राजवंशी में भी है, पर एक नए अंदाज में। वह बच्चों के छोटे-से संसार को कौतुकमय आंख से देखती और दिखाती हैं : *मेरे घर के इस कमरे में /मेरा छोटा-सा संसार /इसमें गुड़िया-गुड्डा भी है /इसमें बुढ़िया-बुड्ढा भी है /बुढ़िया का एक पोता भी है /पोते का एक तोता भी है।*

जाहिर है, नए बाल कवियों में ठीक अपने अंदाज में बात कहने, अपना मुहावरा और शैली गढ़ने का उत्साह बहुत है। मैं आगे की बाल कविता के लिए इसे एक अच्छा संकेत मानता हूं। आज की बाल कविता की स्थिति चाहे ज्यादा उल्लसित करने वाली न हो, मगर यह क्या कम है कि आगे एक 'संभावना-द्वार' हमें नजर आ रहा है।

बहरहाल, इससे यह तो साबित होता ही है कि हिंदी बाल कविता में अभी बहुत-कुछ किया जाना बाकी है। और अगर कोई कल्पनाशीलता और ताजा उत्साह के साथ यह काम करे, तो वह बाल कविता के मौजूदा परिदृश्य में कुछ नए उल्लास भरे रंग जोड़ सकता है और एक नई चमक भर सकता है। □

साक्षात्कार

मुझे हिंदी बाल-साहित्य का कोई भविष्य दिखाई नहीं देता !

दामोदर अग्रवाल से रमेश तैलंग की बातचीत

स्वातंत्र्योत्तर काल में उभरे हिंदी के सामर्थ्यवान और महत्वपूर्ण बाल कवि हैं दामोदर अग्रवाल। दामोदर जी ने जिस तरह की हिंदी बाल कविताएं रची हैं वे भाषा के स्तर पर हमें सीधे अपने परिवेश तथा मिट्टी की गंध से जोड़ती हैं और बच्चों की कल्पनाओं तथा छवियों के स्तर पर आकाश की अनंत ऊंचाइयों तक ले जाती हैं– चाहे वह 'कोई ला के मुझे दे' कविता हो, या 'सड़क पर मिले जो मुझे एक पैसा' या फिर 'चल मेरी नैया कागज वाली'। कभी-कभी यह देखकर सचमुच आश्चर्य होता है कि उम्र के छह दशक पार कर लेने के बाद भी वह 'जादू की गठरी' जैसी अद्भुत बाल कविता कैसे लिख लेते हैं– *जादू की एक गठरी लाऊं/बच्चों में बच्चा बन जाऊं/ एक जेब से शेर निकालूं/ एक जेब से भालू/ शेर बहुत भोला भाला हो/ भालू हो झगड़ालू/ दोनों को झटपट खा जाऊं/ जादू की जो गठरी लाऊं ।*

दामोदर जी की बाल कविताओं में निस्संदेह कुछ अछूते बिंब होते हैं जो उनकी बाल कविताओं को अनूठी बनाते हैं। हर बाल कविता के पीछे एक विशिष्ट संगीतात्मक धुन पीछा करती है। दामोदर जी में बच्चों के जीवन में झांकने की अद्भुत क्षमता है। हालांकि उनकी कुछ बाल कविताएं उन्हीं की श्रेष्ठ कविताओं के बरक्स कुछ कमजोर भी पड़ गई हैं फिर भी आज थोक के भाव लिखी जा रही सतही बाल कविताओं के मुकाबले वे इक्कीस ही ठहरती हैं। एक ओर जहां बाल-साहित्य के स्वर्णिम युग की घोषणा बदस्तूर की जा रही है वहीं दामोदर जी वर्तमान समय को रचनात्मक दृष्टि से 'ठहराव' का समय मानते हैं और हिंदी बाल-साहित्य के लिए तो आगामी चार-पांच दशकों का समय उन्हें अंधकारमय ही नजर आता है। यहां प्रस्तुत है बाल-साहित्य तथा बाल शिक्षा के प्रमुख सवालों पर हुई उनसे *अंतरंग* बातचीत के अंश:

प्रश्न : **दामोदर जी, आपकी बाल कविताओं में जिस तरह की सुंदर बिंब-योजना मिलती है, वह आज की अधिकतर बाल कविताओं में अनुपस्थित है। इसका क्या कारण है? क्या आज के बाल कवियों में कल्पनाएं ही नहीं रहीं?**



दामोदर अग्रवाल

उत्तर : कल्पनाएं तो नहीं रहीं, इसमें कोई शक नहीं। पर साथ ही मुझे लगता है, लोगों के संस्कार बिल्कुल बदल गए हैं। अब वे शायद उस 'फैशन' में पड़ गए हैं जिसे साहित्यिक फैशन कहा जाता है। मुझे हमेशा से लगता रहा है और आज भी लगता है कि एक तरह की प्रेरणा शून्यता बराबर बनती जा रही है। और यह प्रेरणा शून्यता इसलिए बनती जा रही है क्योंकि हम अपने लोक संस्कारों से पूरी तरह दूर हट गए हैं।

प्रेरणा शून्यता की आपने बात की तो आप यह भी बताएं कि बाल-साहित्य के क्षेत्र में आपके प्रेरणास्रोत कौन-कौन लोग रहे, तब के और अब के परिदृश्य में क्या मूलभूत अंतर आया है?

देखिए, जब मैं स्कूल में पढ़ता था तब तो सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं को भी बाल-साहित्य के रूप में रखा जाता था। द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की कुछ बाल कविताएं अच्छी लगीं मुझे। सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओं को बार-बार पढ़ा, पर कभी भी ज्यादा प्रभावित नहीं हुआ। पर मुझे लगता था कि बाल-साहित्य के क्षेत्र में, जहां कोई नहीं है, नखलिस्तान है, वहां एक आदमी है तो ठीक है। उसका नाम तो आना ही चाहिए। तो उस वक्त की परेशानी यह थी। पर आज का परिदृश्य देखें तो लगता है– जंगल ही जंगल है। उसमें हम क्या ढूंढें– पता ही नहीं है।

आपने बाल कविताएं तो बहुत लिखीं। उपन्यास, नाटक या कहानियां नहीं लिखीं बच्चों के लिए?

आपकी बात कमोबेश सही है। दरअसल बच्चों के लिए गद्य लिखने का मेरा मन कभी नहीं हुआ। अगर मैंने कुछ बाल कहानियां लिखी हैं तो वे हरिकृष्ण देवसरे और श्यामसिंह शशि के दबाव में ही आकर लिखी हैं।

छठे-सातवें दशक का *पराग* श्रेष्ठ बाल पत्रिका के रूप में आज भी याद किया जाता है। दामोदर जी, आपको याद होगा, उस समय अवतार सिंह की भी बहुत-सी बाल कहानियां छपा करती थी उसमें?

हां भाई, अब वह अवतार सिंह तो मेरी तरह

बूढ़े हो गए हैं। उनके बच्चे भी बड़े हो गए हैं। मैं सच बताऊं, मेरा पूरा जीवन दर्शन बदल गया है– बच्चों के बड़े होने से। और क्षमा कीजिए, मैं नग्न नहीं हो पा रहा हूं। बच्चों को नई जिंदगी, नए विज्ञान और नई अस्मिताओं ने जो संपन्नता दी है उससे बूढ़े लोगों का दिमाग खराब हो जाता है। साहित्य छोटा लगने लगता है। मुझे भी साहित्य छोटा लगने लगा है। सिर्फ बाल-साहित्य की बात मैं नहीं कह रहा हूं। पूरा का पूरा साहित्य या पूरी की पूरी पत्रकारिता मुझे एक तरह का आधुनिक आडंबर लगने लगी है और यह मेरी बहुत बड़ी कमजोरी है।

आपके कम लिखने या अब बिल्कुल न लिखने का क्या यह भी एक कारण है?

कम लिखने का यह कारण जरूर है पर आप अखबारों या पत्रिकाओं को ही ले लीजिए। जो माध्यम अपने अस्तित्व की ही लड़ाई लड़ रहे हैं वे साहित्य के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए भला क्या करेंगे? शायद यही कारण है कि अगले कम से कम पचास वर्षों तक मुझे हिंदी साहित्य अथवा बाल-साहित्य का कोई भविष्य दिखाई नहीं देता।

क्या आपको नहीं लगता कि टी.वी. जैसे इलैक्ट्रानिक माध्यमों से बच्चों में संवेदनशून्यता बढ़ रही है?

नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता। यह सच हो सकता है कि बच्चों में संवेदनशून्यता बढ़ रही हो पर वह टी.वी. के जरिए नहीं, अन्य सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से बढ़ रही है।

एक दुखद बात यह भी तो हुई है कि आज बाल साहित्यकार गुटबंदी के शिकार हो रहे हैं।

हां, आपकी बात सही है कि बाल साहित्यकार गुटों में बंटे हुए हैं। बाल-साहित्य पूरी दुनिया तो नहीं है। छोटा-सा हिस्सा है साहित्य की दुनिया का। पांच प्रतिशत हो या दस प्रतिशत हो, मुझे पूरी तरह से मालूम नहीं, पर उस छोटी-सी दुनिया का भी 'पोलराइजेशन' हो गया है, यह बड़ी दुखद बात है। यह केवल लेखकों के बीच नहीं हुआ है, संपादकों के बीच भी ऐसी ही स्थिति बन गई है। दूसरी बात यह है कि आज के बाल साहित्यकार को मंच नहीं मिल रहा है। वह परेशान है, दुखी है। या फिर किसी ऐसे फंदे में पड़ चुका है जिससे वह बाहर नहीं निकल पा रहा है। मेरी एक बाल कविता है बिजली पर– *बड़ी शरम की बात है बिजली / बड़ी शरम की बात! / हम गाना गाते होते हैं, या खाना खाते होते हैं / पता नहीं चलता थाली में / किधर दाल औ' भात है बिजली, बड़ी शरम की बात!* इस कविता को *पराग* के तत्कालीन संपादक ने भी प्रकाशित करने से मना कर दिया। उनका मानना था कि यदि यह प्रकाशित हो गई तो बिजली वाले नाराज हो जाएंगे और उनकी बिजली कट जाएगी। बाद में यह कविता धर्मवीर भारती ने *धर्मयुग* में छापी और बहुत अच्छी तरह से छापी। तो इस तरह के संस्कार, सरकारी नौकर हों या गैर सरकारी नौकर, लोगों में बनने शुरू हुए थे 1970 के आसपास। यह चीज धर्मवीर भारती में नहीं थी।

पहले की पत्रकारिता एक मिशन की तरह थी पर आज के संपादकों का हाल तो कुछ और ही है। कुछ समय पूर्व मेरी मुलाकात एक प्रतिष्ठित पत्र के संपादक से हुई थी तो उन्होंने कहा था कि हमारा जो मालिक है वह प्रधान संपादक को इतना पैसा और इतनी सुख-सुविधाएं दे देता है कि हम उसकी मुखालफत नहीं कर पाते हैं।

आप अच्छे साहित्यकार होने के साथ-साथ अच्छे शिक्षाविद भी रहे हैं। शिक्षा के विभिन्न मुद्दों पर आप लेख भी लिखते रहे हैं। आपको क्या लगता है, क्या शिक्षा और साहित्य के बीच आज अंतर्विरोध कुछ ज्यादा ही हो गए हैं?

आप अगर बाल-साहित्य के संदर्भ में यह बात कर रहे हैं तो मैं कहूंगा कि कुछ न कुछ अंतर्विरोध तो हैं ही। स्कूलों में मैं कभी-कभी जाता हूं तो देखता हूं कि शिक्षिकाएं या शिक्षक जो हैं उन्हें बाल-साहित्य के रचयिताओं के नाम भी नहीं मालूम। वहां जो बच्चे कविताएं सुनाने आते हैं वे या तो जो पाठ्यपुस्तक में है, वह कविता सुनाते हैं या फिर वह सुनाते हैं जो उनकी शिक्षिका या शिक्षक उन्हें लिखकर दे देते हैं। यदि उनसे कहिए कि ये कवि हैं...ये कवि हैं तो उनका जवाब होता है– 'हमें तो इनके बारे में कुछ भी नहीं मालूम।' उनकी लाइब्रेरी में जाइए तो हम जैसे लेखकों की कोई किताब ही नहीं है वहां। तो बड़ी निराशा-सी होती है। यहीं, एक प्रसंग और सुनाऊं आपको। दो महीने पहले मेरे एक विदेशी मित्र मुझसे मिलने आए। अमरीकन थे और यहीं पास में 'डिफेंस कालोनी' में ठहरे हुए थे। उन्होंने कहा कि उन्हें हिंदी का कुछ बाल-साहित्य खरीदना है। तो उन्हें लेकर मैं साउथ दिल्ली में कम-से-कम बीस किलोमीटर घूमा, पचासों दुकानों पर गया पर 'नेशनल बुक ट्रस्ट' को छोड़कर कहीं कोई एक भी हिंदी बाल-साहित्य की पुस्तक नहीं दिखी मुझे। कनाट प्लेस भी घूमा पर वहां भी लगभग यही हालत थी। हां, खान मार्केट में कुछ दुकानदारों ने इतना कहा कि हमें बाल-साहित्य के बारे में ज्यादा कुछ तो पता नहीं, पर आप अगर आर्डर करेंगे तो दस-पंद्रह दिन में आपकी किताबें मंगाकर आपको भेज देंगे। तो यह स्थिति है। इससे आपका यह भ्रम भी टूटेगा कि बाल-साहित्य की किताबें घर-घर पहुंच रही हैं, जब कि वास्तव में ऐसा है नहीं।

आपकी बातों से तो ऐसा लग रहा है कि साहित्य और शिक्षा दोनों की निरर्थकता साबित हो रही है?

मेरा कहना यह है कि शिक्षा को थोड़ा संस्कारवादी बनाए रखने की जरूरत है और अंग्रेजी स्कूलों का जो दबदबा है उसे कम करने की कोशिश इस तरह हो सकती है कि हिंदी स्कूलों को भी उस स्तर का स्कूल बना दीजिए। हिंदी वहां पढ़ाइए या न पढ़ाइए– और बात है पर, सुख-सुविधाएं वही दीजिए, जो अंग्रेजी स्कूलों में है।

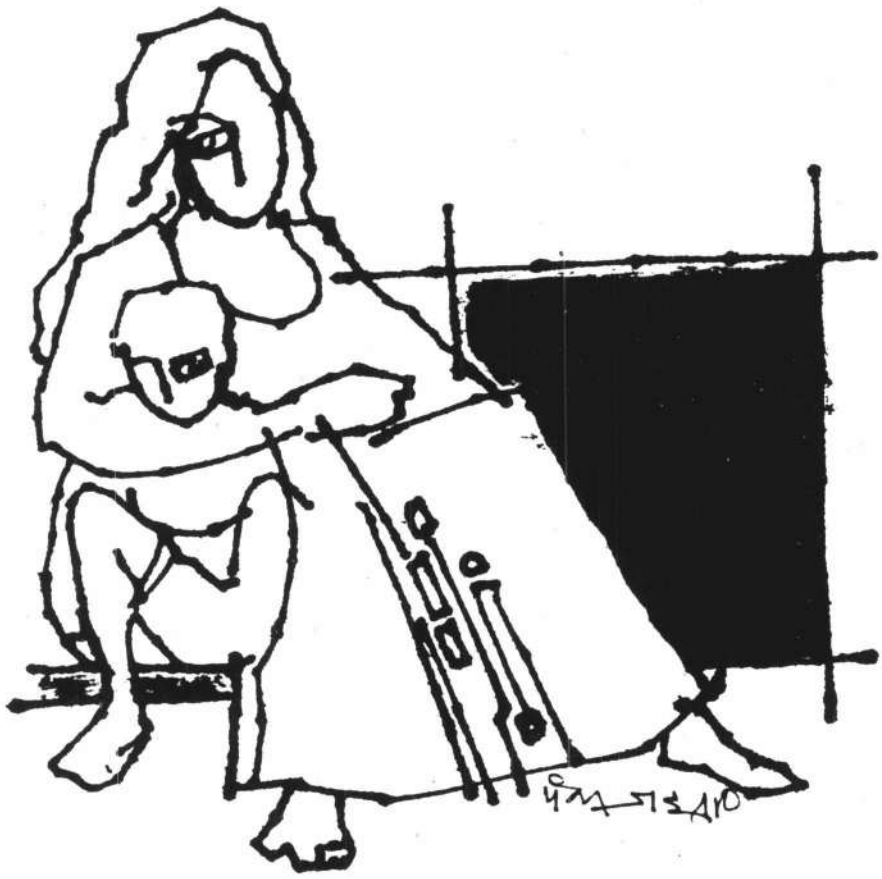
आपकी सबसे पहली बाल कविता कौन-सी थी और कहां छपी थी?

मेरी पहली प्रकाशित बाल कविता एक लोरी थी जो 1952 में *धर्मयुग* में छपी थी। धर्मवीर भारती ने ही छापी थी। उसका मुखड़ा था:

चांद की सवारी पे भानमती रानी
लाई पिटारी भर किस्सा कहानी
तारे दें ताली, पलकों पर परियां
नचाओ री निंदरिया निंदार वन से!

उठते-उठते मैं सोच रहा हूं कि अब के बाल-साहित्य में लोरियां तो बिसरती ही जा रही हैं और निंदरिया तथा निंदार वन जैसे देशज शब्द भी कंप्यूटरी दुनिया में कब के दम तोड़ चुके हैं। □

कहानी



चिट्ठी

मोहनलाल गुप्ता

रेखांकन : पंकज झा

आप यह समझने की भूल कदापि न करें कि आप कोई कहानी पढ़ रहे हैं। यह एक चिट्ठी है जो मैंने आपके नाम लिखी है। लोगों को दूसरों के घरों में झांकने की आदत होती है, दूसरों के नाम आई चिट्ठी पढ़ने की आदत होती है। यह तो अच्छा है कि हम उनके घरों और चिट्ठियों तक ही सीमित रहते हैं। यदि हम किसी की जिंदगी में झांककर देख लें तो मेरा दावा है कि लोग दूसरों के घरों और चिट्ठियों में झांकना छोड़ दें।

हालांकि मेरी उम्र दावे करने की नहीं है। सात साल की उम्र होती ही क्या है? किंतु आप विश्वास नहीं करेंगे कि अनुभवों के जिस दौर से मैं पिछले सात सालों में गुजरा हूं, उनके कारण दुनिया में मेरे लिए समझने को कुछ भी शेष नहीं रह गया है। सच पूछो तो अब मैं दुनिया को क्या समझता हूं! कुछ भी नहीं। दुनिया के नाम मेरी यह पहली और आखिरी चिट्ठी है। जब तक यह चिट्ठी आप तक पहुंचेगी, मैं इस दुनिया से बहुत दूर किसी और दुनिया में जा चुका होऊंगा।

मैं जब पैदा हुआ तो दूसरे बालकों की ही तरह प्यारी-सी सूरत, नन्ही मुट्ठियां और घुंघराले बाल लेकर दुनिया में आया। मेरी नन्ही आंखों में उत्सुकता का समुद्र समाया हुआ था। मेरी किलकारी में संगीत था और मेरे रुदन में छिपी थी माता-पिता के हृदय की अनंत अभिलाषाएं। कहते हैं, बालक जब पैदा होता है तब मुट्ठियां बांधकर आता है ताकि विधाता द्वारा दिया गया भाग्य मजबूती से पकड़े रहे। मुट्ठियां मेरी भी जन्म के समय बंद थीं किंतु उनमें विधाता द्वारा दिया गया भाग्य नहीं, किसी पूर्व जन्म के पापों के परिणाम से उपजा दुर्भाग्य बंद था।

मेरी शब्दावली पर आप आश्चर्य न करें, मैं पहले ही कह चुका हूं कि अनुभवों ने मुझे आयु सीमा के बंधनों से मुक्त कर दिया है।

हां, तो मैं बात कर रहा था अपने जन्म की। जन्म के समय अन्य बालकों की तरह ही सामान्य दिखने के बावजूद एक असामान्यता मेरे शरीर में मौजूद थी। मेरी पीठ पर एक छोटा-सा घाव था जो रीढ़ की हड्डी तक गहरा था। चूंकि आजकल के दूसरे बालकों की तरह मैं भी अस्पताल में पैदा हुआ था अत: डाक्टर ने मेरे पैदा होते ही मेरे शरीर का निरीक्षण किया और कहा कि यदि इस घाव का आपरेशन चौबीस घंटे में न किया गया तो यह बालक जीवित नहीं बचेगा।

उसने यह भी आशंका जताई कि इस आपरेशन के बाद बालक का 'सिर' हाथ-पैरों की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ सकता है। बालक का

पूरी तरह सामान्य होना शायद ही संभव हो। मेरे माता-पिता के सामने विचित्र स्थिति आ खड़ी हुई। क्या करें, क्या न करें? यदि आपरेशन नहीं करवाते हैं तो मैं, जो कि उनकी पहली संतान था, जिसके लिए जाने उन्होंने कितने श्वेत-रतनारे स्वप्न संजोए थे, जीवित नहीं बचता और यदि आपरेशन करवाते हैं तो मेरी आकृति असामान्य हो जाएगी। कौन जाने मैं कभी अपने पैरों पर खड़ा हो सकूंगा कि नहीं! बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने मेरा आपरेशन करवाना ही उचित समझा।

मैं बच गया और सामान्य बच्चे की तरह दिखने लगा। मेरे माता-पिता प्रसन्न थे। मेरी मां मुझे घंटों निहारती रहती। कभी मेरे पिता से कहती- "मिजाज में बिल्कुल आप पर गया है, जरा-जरा-सी बात पर गुस्सा किया करेगा।"

"और शक्ल-सूरत में तो बिल्कुल तुम पर गया है। देखो तो बड़ी-बड़ी आंखें, बिल्कुल तुम्हारे जैसे होठ और तीखी नाक।" मेरे पिता मां की बात को आगे बढ़ाते।

"बस-बस रहने दो, इसके बहाने मेरी चापलूसी कर रहे हो!" मां इतराकर कहती।

"चापलूसी तो मैं तुम्हारी जिंदगी भर करूंगा, रानी!" यह कहकर मेरे पिता हंस पड़ते।

उन्हीं दिनों मुझे मालूम हुआ कि मेरी मां हाकी की बड़ी अच्छी खिलाड़ी थी तथा देश-विदेश की कई स्पर्धाओं में उसने अच्छी ख्याति अर्जित की थी। अपने देश की ओर से ओलंपिक भी खेल चुकी थी। मेरे पिता भारत सरकार में किसी बड़े पद पर थे। एक बार उनकी नियुक्ति नेशनल स्पोर्ट्स स्कूल, पटियाला में हुई। वहीं उनकी भेंट मेरी मां से हुई। मेरी मां जितना अच्छा खेलती थी, वह उतनी ही सुंदर थी और उतनी ही बुद्धिमान भी। मेरे पिता ने मेरी मां के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। मां को भी मेरे पिता पसंद आए और दोनों का विवाह हो गया। मेरे पिता मां को छेड़ने के लिए अक्सर कहते-'जार्ज बर्नाड शॉ दुनिया का सबसे बुद्धिमान आदमी समझा जाता था। उसने दुनिया की समस्त स्त्रियों को तीन वर्गों में बांट रखा था-सुंदर, बुद्धिमान और बहुसंख्यक। तुम कौन से वर्ग में आती हो?"

"बर्नाड शॉ की आड़ लेकर तुम मुझे जिस वर्ग में रखना चाहते हो, मैं उसी वर्ग में आती हूं।" मां हंसकर जवाब देती।

"क्या तुम सुंदर हो?"

"मुझे क्या पता, यह तो तुम जानो।"

"क्या तुम बुद्धिमान हो?"

"मैंने कहा न, मुझे पता नहीं।"

"तो क्या तुम इन दोनों वर्गों में से नहीं हो?"

"शायद ऐसा ही हो।"

"तो तुम बहुसंख्यक हो।"

"मैं अच्छी तरह समझती हूं कि तुम घुमा-फिराकर क्या कहना चाहते हो!"

"क्या कहना चाहता हूं?"

"तुम कहना चाहते हो कि सुंदर स्त्रियां मूर्ख होती हैं और बुद्धिमती स्त्रियां कुरूप होती हैं और दुनिया की अधिकांश स्त्रियां न सुंदर होती हैं और न बुद्धिमती अर्थात् दुनिया की ज्यादातर स्त्रियां कुरूप और मूर्ख होती हैं। लेकिन शायद तुम्हें पता नहीं कि यह बात केवल स्त्रियों पर नहीं, पुरुषों पर भी लागू होती है। दुनिया का सबसे बुद्धिमान पुरुष समझा जाने वाला जार्ज बर्नाड शॉ स्वयं भी दुनिया का सबसे कुरूप व्यक्ति था।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"क्यों, तुमने वह किस्सा नहीं सुना क्या?"

"कौन-सा?"

"हॉलीवुड की सबसे सुंदर अभिनेत्री ने एक बार बर्नाड को चिट्ठी लिखी कि हम दोनों विवाह कर लें। हमसे जो संतान पैदा होगी वह तुम्हारे समान बुद्धिमान और मेरे समान रूपवान होगी। बर्नाड ने जवाब दिया कि मुझे खेद है कि मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकता, यदि इसका उल्टा हो गया, तो?"

"अर्थात् तुम मानती हो कि हॉलीवुड की सबसे सुंदर अभिनेत्री भी मूर्ख थी। इसका अर्थ यह हुआ कि जार्ज का वर्गीकरण ठीक था।"

इस प्रकार मां स्वयं ही परास्त हो जाती और खीझकर कहती-"बर्नाड को छोड़ो, तुम अपने वर्गीकरण की कहो।"

"हां, यह हुई न कोई बात। मेरे वर्गीकरण के अनुसार संसार की स्त्रियां इन तीन वर्गों में रखी जा सकती हैं- सुदर्शिनी, प्रियदर्शिनी और प्रदर्शनी।"

"इसका क्या मतलब?"

"इसका मतलब यह कि कुछ स्त्रियां देखने में अच्छी होती हैं, कुछ को देखना अच्छा लगता है और बाकी की स्त्रियां तो केवल देखने-देखने की होती हैं।"

"मुझे आपने कौन-से वर्ग में रख रखा है?"

"यदि नाराज नहीं होओ तो बताऊं?"

"मैं क्यों नाराज होने लगी?"

"तो फिर बता दूं?"

"हां-हां बता दो, डरते क्यों हो?"

"तो सुनो- तुम पहले दोनों वर्गों में आती हो।"

"चलो हटो! फिर चापलूसी पर उतर आए!" मां की खीझ समाप्त हो जाती।

हमारे घर की प्रसन्नता के ये दिन मेरे भाग्य की मुट्ठी में अधिक न निकले। शीघ्र ही मेरे माता-पिता को पता चल गया कि मेरा माथा मेरे हाथ-पैरों की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ रहा है। डेढ़ साल का होने पर भी मैं चलना नहीं सीख सका। सीखता भी कैसे? मेरे पैर तो छः महीने के बालक जितने थे और सिर तथा सीना तीन साल के बालक जितने। मेरे इलाज की बहुत कोशिशें की गईं किंतु सब बेकार गया। ऐसा कोई डाक्टर, वैद्य, हकीम, ओझा, पीर और सयाना नहीं था जिसकी प्रसिद्धि सुनकर मेरे माता-पिता मुझे उसके पास न ले गए हों। मां मुझे गोद में उठाए मंदिरों, तीर्थों और साधु बाबाओं के पास भटकती रहती किंतु कोई परिणाम न निकला।

मैं चलना तो नहीं सीख सका किंतु मुझे बैठना आ गया। दो साल का होते-होते मैं बोलने भी लगा। मेरी वजह से मां का खेलना छूट गया। वह सारे दिन मेरे ही चारों ओर घूमती रहती। मेरे अतिरिक्त दुनिया में और किसी चीज का उसे ध्यान न रह गया। हाकी की गेंद की जगह अब मैंने ले ली। मैं ही अब उसकी सारी प्रतियोगिताओं का केंद्र बन गया। उसके सारे मैडल और पदक मुझमें समाहित हो गए। मैं उसके भाग्य की ऐसी गेंद बन गया जिसे अंपायर ने सदा-सदा के लिए फाउल करार दे रखा था किंतु मां थी कि उसी फाउल बॉल से गोल कर देना चाहती थी।

मां धीरे-धीरे मुझे पढ़ाने लगी। मैं पढ़ाई-लिखाई में बहुत तेज निकला और जल्दी ही काफी कुछ सीख गया। मुझे लगता है कि जो लोग शरीर से कमजोर होते हैं, उनकी बुद्धि बहुत तेज काम करती है। मेरे पिता अब अक्सर खीझ पड़ते। मैं ही उसका कारण होता। पिताजी के खाने का समय होता और मैं कपड़े खराब कर लेता। मां आधी लगी हुई थाली छोड़कर मुझे साफ करने में लग जाती। कई बार गुस्सा होकर पिताजी थाली फेंक देते। भूखे ही आफिस चले जाते। मां उन्हें समझाती, "आप बड़े हैं। उठकर भी खाना ले सकते हैं। यह बच्चा दूसरों का मोहताज है। इसका काम पहले करना जरूरी है।" पिताजी कभी-कभी तो मां की झिड़की चुपचाप सुन लेते और कभी उल्टे बरस पड़ते।

इसी सबके बीच मैं पांच साल का हो गया। दुनिया का कोई इलाज मेरे काम नहीं आया। मेरा सिर बाकी शरीर के एक तिहाई से भी ज्यादा बड़ा हो गया। फिर भी मां मुझे चिपकाए रहती। कभी भूलकर भी मुझ पर नहीं खीझती।

मैं जब बहुत छोटा था तब पिताजी मेरे लिए एक गुड़िया खरीदकर लाए थे। मैंने मां के मुंह से सुना था कि वह जापानी गुड़िया कहलाती थी। उसे जब लिटाते तो उसकी आंखें बंद हो जातीं और जब उसे खड़ा कर देते तो आंखें खुल जाती थीं। उसके रेशमी चिकने बाल उसकी पीठ पर झूलते रहते। मां कभी उन बालों की चोटियां गूंथ देती तो कभी कसकर जूड़ा बांध देती। मैं उसके बाल खोल देता। वह मुझे खुले बालों में ही अच्छी लगती थी। गुड़िया को चाहे सुला दो या खड़ी कर दो, वह सदैव हंसती रहती थी।

जब गुड़िया घर में आई थी तब मां भी उसके जैसी ही लगती थी। लेटते ही आंखें बंद कर लेती। आंखें बंद करके ही वह कहानी कहती। मां को बहुत सारे गीत याद थे जिन्हें वह बहुत मीठे स्वर में गाया करती। मैं चाहता था कि गुड़िया भी मां की तरह गाए किंतु गुड़िया मेरे लाख कोशिश करने पर भी नहीं गाती। तब मां ही मुझे गीत सुनाकर चुप करती। पिछले सात सालों में गुड़िया जाने कहां गई! मां भी अब गुड़िया जैसी नहीं दिखती। उसका चेहरा बदलता जा रहा है। मां अब भी लेटते ही आंखें बंद कर लेती है किंतु अब वह पहले की तरह मुस्कुराती नहीं है। उसके बाल भी जाने कैसे हो चले हैं, गुड़िया जैसे नहीं हैं।

इधर मेरा माथा बढ़ता जा रहा है और उधर पिताजी का गुस्सा। धीरे-धीरे उन्होंने मुझसे स्थायी रूप से घृणा करना आरंभ कर दिया है। उनकी इस घृणा के कई कारण हैं, जो वे मां को सुनाया करते हैं। मेरी असामान्य और भुतहा आकृति के कारण वे अपने किसी मित्र-परिचित को घर नहीं ला सकते और न ही वे मुझे और मेरी मां को लेकर किसी मित्र-परिचित, सगे-संबंधी के यहां अथवा सिनेमा देखने जा सकते हैं। पिताजी का सामाजिक जीवन मेरे कारण पूरी तरह समाप्त होकर रह गया है। मेरे जन्म से पहले तथा बाद के कुछ सालों तक घर में पिताजी के मित्रों-परिचितों और सगे-संबंधियों का मेला लगा रहता। घर में सदैव हंसी-ठट्ठा और उत्साह का माहौल बना रहता किंतु अब तो भूलकर भी हमारे घर में कोई नहीं आता। पिताजी की कमाई का ज्यादातर हिस्सा मेरे उपचार, किराए और भाड़े में खर्च हो जाता है। बचे हुए पैसों से घर का खर्च भी मुश्किल से ही चल पाता है।

पास-पड़ोसी मेरी शक्ल नहीं देखना चाहते। यह जानकर तो पिताजी को और भी गुस्सा आता है कि उनके अधीनस्थ कर्मचारी उनकी पीठ पीछे हंसी उड़ाते हैं। बालकों ने मेरा नाम बागड़बिल्ला रख दिया है। उन्हीं में से किसी के मुंह से मैंने सुना है कि राजस्थान में डूंगरपुर-बांसवाड़ा का क्षेत्र बागड़ा कहलाता है जहां मेरी तरह की भद्दी शक्ल और बेडौल आकृति के बिलाव पाए जाते हैं।

मेरे पिताजी मेरे बाद एक और संतान चाहते हैं जो दिखने में दूसरे बालकों की तरह सामान्य हो ताकि घर की मनहूसियत कुछ कम हो सके किंतु मां इसके लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं। उसका मानना है कि दूसरे बालक के आ जाने से मेरी उपेक्षा होगी तथा पूरी तरह देखभाल और उपचार नहीं हो पाएगा। मां को पूरा विश्वास है कि एक दिन मैं पूरी तरह ठीक हो जाऊंगा। मेरी आकृति दूसरे बालकों की तरह सामान्य हो जाएगी। मैं उन्हीं की तरह भाग-दौड़ सकूंगा, कंधे पर बस्ता लटकाकर स्कूल जाया करूंगा और जब बड़ा हो जाऊंगा तो उनके लिए एक खूबसूरत-सी बहू लेकर आऊंगा जो उन्हीं की तरह जापानी गुड़िया जैसी होगी।

पिताजी मां की बातों पर हैरान होते, उसे पागल कहते तथा गालियां देने लगते। एक दिन तो उन पर जैसे भूत सवार हो गया। कहने लगे-"इसे कोढ़ियों को दे देते हैं। वे इसे भीख मांगने वाली गाड़ी में बैठाकर भीख मांगा करेंगे। इसे देखकर लोग भीख भी ज्यादा देंगे और कोढ़ी लोग इसका ध्यान भी रखेंगे।"

पिताजी की इस बात से घर में कोहराम मच गया। मां ने अपना सिर दीवार पर दे मारा। बोली-"भगवान से डरो।"

पिताजी ने कहा- "इसमें बुराई क्या है? किसी के घर हिजड़ा पैदा हो जाता है तो क्या वे मां-बाप अपना बच्चा हिजड़ों को नहीं दे देते?"

"मेरा बच्चा हिजड़ा नहीं है।"

"नहीं, यह तो पूरा महाराणा प्रताप है।"

"दुनिया के सारे बच्चे महाराणा प्रताप नहीं होते।"

"दुनिया के सारे बच्चे इसकी तरह अपाहिज भी नहीं होते।"

"यह अपाहिज है तो इसमें इसका क्या कुसूर है?"

"कुसूर तो सारा मेरा है।"

"यह तो सब अपने-अपने भाग्य की बात है। इसमें किसी का भी क्या कुसूर है?"

मैं टुकुर-टुकुर उन दोनों को देखता रहा। मैंने सोचा कि यदि मैं चल सकता तो स्वयं ही चलकर कोढ़ियों के पास पहुंच जाता। हिजड़ों को तो मैं नहीं जानता कि वे कौन लोग होते हैं और कहां पाए जाते हैं किंतु कोढ़ियों को मैंने अक्सर ही मंदिरों के बाहर छोटी-छोटी गाड़ियों में बैठकर भीख मांगते देखा है। मेरे चले जाने से पिताजी को इस अदम्य वेदना से मुक्ति मिलती और मां भी कुछ दिन रो-धोकर चुप हो जाती। कुछ दिनों बाद घर में कोई दूसरा बच्चा आता जिसकी किलकारियों से घर की मनहूसियत दूर हो जाती, किंतु मैं चल कहां सकता हूं? चल ही सकता तो फिर रोना ही किस बात का था?

मां अब अधिक परेशान हो गई। नित्य ही मुझे लेकर मंदिर की चौखट पर नाक रगड़ने जाती। घंटों रोती रहती, भगवान से मेरे ठीक होने की प्रार्थना करती, पागलों की तरह झोली फैला लेती।

एक दिन पिताजी एक छोटी-सी पुड़िया लाए,

बोले– ''इसे यह खिला देते हैं। जीवन भर नरक भोगने से तो अच्छा है कि छोटा-सा पाप कर लिया जाए।''

मां सिंहनी की तरह बिफर गई। बोली– ''खबरदार, जो तुमने ऐसी नीच हरकत की, तो। इसे जहर देने से तो अच्छा है, मुझे ही कुछ खिला दो। फिर तुम्हारी जो इच्छा हो सो करना।''

उस दिन झगड़ा बढ़ गया। पिताजी ने कहा–''चाहे जो हो, आज तो इसे मारकर ही दम लूंगा।''

पिताजी का यह रूप देखकर मां मुझे उठाकर बाहर भाग आई। पिताजी ने पीछे से डंडा फेंककर मारा जो मां के सिर में लगा। सिर फट गया और खून की धार बहने लगी। मां सिर पकड़कर वहीं बैठ गई। पिताजी का गुस्सा गायब हो गया। मां के सिर से खून बहता देखकर वे दौड़े आए और मां का सिर पकड़ कर बालकों की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। मोहल्ले में अच्छा-खासा तमाशा खड़ा हो गया। मां पिताजी को और मुझे लेकर घर में चली आई। मुझे मां की गोद से उतारकर पिताजी ने मां का घाव धोया और सूती कपड़ा जला कर घाव में भरा। बहुत दिनों बाद मैंने मां और पिताजी को साथ-साथ बैठे देखा। पिताजी जहर की जो पुड़िया लाए थे, वह मेरे पास ही पड़ी थी। उसे मैंने अपने कपड़ों में छिपा लिया।

शाम होने को है। मां खाना बनाने में व्यस्त है। आज बहुत दिनों बाद पिताजी पूजा कर रहे हैं। इधर पिछले कई सालों से उन्होंने पूजा करना छोड़ रखा है, भगवान पर से तो उनका विश्वास जैसे पूरी तरह उठ गया है। मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया है कि जो काम पिताजी नहीं कर पाए, उसे मैं स्वयं कर लेता हूं। पुड़िया खाने से पहले मैंने यह पहली और आखिरी चिट्ठी आपके नाम लिखी है ताकि आप मेरी मां और पिताजी को किसी बात के लिए दोषी न ठहराएं।

चिट्ठी पूरी करके जैसे ही मैंने पुड़िया खोली और चाहा कि फांक लूं, अचानक मेरे हाथों से पुड़िया किसी ने छीन ली। मैंने सहमकर सिर ऊपर उठाया। देखा– पिताजी थे। वे कब पूजाघर से आकर मेरे पास खड़े हो गए, चिट्ठी लिखने की धुन में मुझे पता ही नहीं लगा। मैंने सोचा, अब मेरी खैर नहीं है किंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ। मेरे अनुमान के विपरीत पिताजी ने मुझे प्यार से गोद में उठाया और सीने से लगाते हुए बोले– ''हम जिंदगी से इस तरह हार नहीं मानेंगे। मेरी इतनी छोटी गलती की इतनी बड़ी सजा मुझे मत दो बेटा कि मैं जिंदगी भर जी न सकूं।''

पिताजी की आवाज सुनकर मां रसोईघर से बाहर निकल आईं। उसे डर था कि पिताजी मुझे कुछ चोट न पहुंचाएं। कमरे में पहुंचकर मां के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

उस दिन हम तीनों ने साथ बैठकर खाना खाया। मेरी लिखी चिट्ठी अब कोई अर्थ नहीं रखती, अत: यदि चिट्ठी आपके हाथों में लग गई हो तो उसे न पढ़ें। दूसरों की चिट्ठियां पढ़ना कोई अच्छी बात नहीं है। क्योंकि यही वह मोड़ है जब चिट्ठी, चिट्ठी न रहकर कहानी बनने लगती है। □

बाल भारती

बच्चों की संपूर्ण मासिक पत्रिका



गौरवशाली प्रकाशन के 50 वर्ष

रोचक कहानियां, मनभावन कविताएं, जानकारी भरे लेख।
मजेदार चित्रकथाएं और कार्टून - जो मनोरंजन भी करें, ज्ञान भी बढ़ाएं और प्रेरणा दें - अच्छा और सच्चा बनने की।
न भूतप्रेत, जादू-टोना, न बेईमानी का 'शार्ट कट', न आलस के हवाई किले...न किस्मत का रोना।

बाल भारती सिखाए वैज्ञानिक समझ से चीजों को परखना और आगे बढ़ते जाना।
बाल भारती - बच्चों को लुभाए, बड़ों को भी पसंद आए।

एक प्रति : 5 रुपये वार्षिक चंदा : 50 रुपये

वार्षिक सदस्यता के लिए लिखें :

विज्ञापन व प्रसार व्यवस्थापक,
पूर्वी ब्लाक, लेवल-7, रामकृष्णपुरम
नई दिल्ली-110066
दूरभाष : 6105590

बाल-साहित्य में दखलंदाजी न करके 'बड़े' लेखकों ने 'कृपा' ही की है!

बालस्वरूप राही से* रमेश तैलंग *की बातचीत

प्रतिष्ठित हिंदी कवि एवं बाल-साहित्यकार बालस्वरूप राही उन थोड़े से रचनाकारों में हैं जिन्होंने समकालीन हिंदी बाल कविता को परंपरा और आधुनिकता दोनों से जोड़कर नया मुहावरा दिया है। शब्दों का सतर्क चयन और छंद तथा लय का अदभुत तालमेल उनकी बाल कविताओं में देखने को मिलता है। नई दृष्टि के साथ वह बच्चों की जिज्ञासाओं, कल्पनाओं और आवश्यकताओं को जिस सहजता से बाल कविताओं में अभिव्यक्त करते हैं, वह एक कुशल शब्द-शिल्पी ही कर सकता है। राही जी बाल कविताओं को मात्र निरर्थक तुकबंदी का खेल नहीं मानते। वह उन्हें किसी न किसी जीवन-मूल्य अथवा संदेश का संवाहक मानते हैं।

राही जी के अब तक कई बाल-गीत संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें प्रमुख हैं- *दादी अम्मा मुझे बताओ, हम सबसे आगे निकलेंगे, बंद कटोरी मीठा जल* और *हम जब होंगे बड़े* । इनमें से *दादी अम्मा मुझे बताओ* संग्रह राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली द्वारा पुरस्कृत हो चुका है। प्रस्तुत है राही जी से उनके बचपन के प्रसंगों तथा बाल-साहित्य के कुछ अहम मुद्दों पर हुई बातचीत :

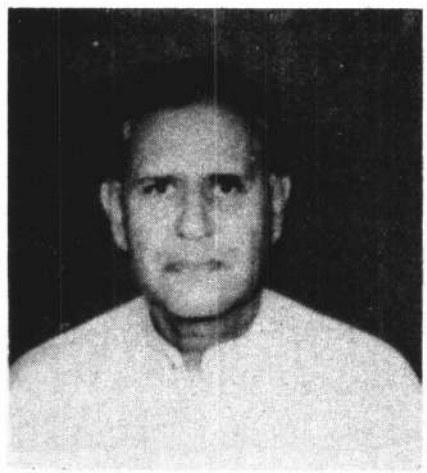
प्रश्न : राही जी, आपने गीत और ग़ज़ल दोनों विधाओं में अपनी अलग पहचान बनाई है। बाल कविताओं की ओर आपका रुझान कब और कैसे हुआ?

उत्तर : जो बातें किसी को कवि बनाती हैं वही बातें उसे बालकवि भी बनाती हैं। ऐसा नहीं है कि बाल-साहित्यकार के प्रेरणा स्रोत अलग होते हैं। मैं यह मानता हूं कि कविता कुछ लोगों के स्वभाव में होती है। वे कवि होने के लिए ही पैदा होते हैं और कवि होने के अलावा वे कुछ बन ही नहीं सकते। शायद उन्हीं लोगों में से एक मैं हूं।

बचपन का कोई प्रसंग...?

तब मैं सातवीं या आठवीं कक्षा का छात्र था। मैं जिस स्कूल में पढ़ता था उसके प्रिंसिपल मेरे पिताजी थे। उस जमाने में सिनेमा देखना बहुत अच्छा नहीं माना जाता था। जब मेरी कक्षा का परीक्षाफल घोषित हुआ तो मेरे बहुत-से सहपाठी सिनेमा देखने गए। उन्होंने मुझसे भी चलने को कहा । पर मेरे पिताजी बड़े अनुशासनवादी थे। वह बहुत बुरा मानते थे सिनेमा को। तो मुझे इजाजत नहीं मिली, जबकि मेरे साथी सिनेमा चले गए। तो झुंझलाहट और आक्रोश में मैं अपने घर के एक छोटे से कमरे में घुस गया और अपने को कैद कर लिया। काफी देर तक किसी को पता नहीं चला। जब मेरी खोज हुई तो घर वालों का ध्यान उस कमरे की ओर गया जिसमें मैंने अंदर की सिटकनी लाकर अपने को कैद कर लिया था। बार-बार धक्के मारने से जब सिटकनी ढीली होकर खुल गई तो घर वालों ने अंदर क्या देखा कि मैं झुंझलाहट में बार-बार अपने सिर के बाल खींच रहा हूं और आंसू मेरी आंखों से टपटप बहे जा रहे हैं। साथ ही मैं एक कापी पर पैन से कुछ लिखे जा रहा हूं : 'लगा दो आग दुनिया में, ये दुनिया है इसी काबिल।' तो अब आप अंदाजा लगा सकते हैं कि घटनाओं के प्रति मेरे मन में कितनी तीव्र प्रतिक्रिया होती थी! तुकों का, छंद का, लय का शौक इसलिए पैदा हुआ क्योंकि हमारे घर में उर्दू, फारसी का चलन था। तो छंद रचने और तुकें मिलाने में जब हमें दक्षता प्राप्त हो गई तो गीत, ग़ज़ल और बाल कविताओं का सिलसिला भी चल निकला । उस समय एक पत्रिका छपती थी – *किशोर भारती* । यह तब की बात है जब मैं बारह-चौदह वर्ष का रहा होऊंगा। यानी कि सन 1950 के करीब की बात होगी। उसमें मेरी पहली कविता प्रकाशित हुई जो 'चंदा मामा' पर थी :

चंदा मामा! मेरे आंगन में तुम आना
कितने सुंदर, कितने प्यारे
मन को हर लेते हो हमारे !



बालस्वरूप राही

तो इस पत्रिका में छपने के बाद मेरा उत्साह बढ़ा। कुछ समय बाद मैं पत्रकारिता के क्षेत्र में आ गया। अंशकाल में मैं कुछ काम *सरिता* पत्रिका के लिए करने लगा। वहां कई बार ऐसा होता था कि अच्छी सामग्री उपलब्ध नहीं रहती थी और 'मैटर' प्रेस में जाना होता था। तो बहुत-सी चीजें मुझे खुद ही लिख देनी पड़ती थीं। *सरिता* के लिए मैंने बहुत-सी बाल कविताएं भी लिखीं। फिर मेरे एक मित्र प्रकाशक बन गए थे और उन्हें कुछ अच्छी पांडुलिपियों की आवश्यकता थी। उन्होंने मुझसे बाल-गीत संग्रहों का आग्रह किया। उन्होंने मेरी कई पुस्तकें छापीं, जिनमें *दादी अम्मा मुझे बताओ* भी

शामिल है जिस पर राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली का पुरस्कार घोषित हुआ।

एक आरोप अक्सर लगाया जाता है कि बड़े लेखक, खासकर हिंदी के बड़े लेखक, बच्चों के लिए बिल्कुल नहीं लिखते या कम लिखते हैं। इस आरोप में कितनी सच्चाई है?

यह एक संदिग्ध तथा विवादास्पद कथन माना जाएगा। गद्य लेखन के विषय में मेरी जानकारी व्यापक नहीं है इसलिए मैं दावे के साथ नहीं कह सकता. ..पर बाल कविताएं तो बहुत से बड़े लेखकों ने लिखी हैं। वैसे मैंने जितने बड़े कवियों की बाल कविताएं पढ़ी हैं, उनसे मैं अधिक प्रभावित नहीं हूं। जैसे सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, यहां तक कि बच्चन जी– इनमें से किसी ने भी मार्के की बाल कविता लिखी हो, मेरे देखने में नहीं आई। बल्कि उनकी बाल कविताओं में कई-कई जगह पर तो बड़ों की कविताओं का प्रभाव बुरी तरह हावी हो जाता है। 'बड़े' लेखकों ने बाल-साहित्य में दखलंदाजी न करके बाल-साहित्य पर 'कृपा' ही की है। क्योंकि अगर वे ऐसा करते तो बाल-साहित्य का नाश ही करते, उसका उद्धार नहीं करते– ऐसी मेरी मान्यता है।

बाल कविता और बड़ों की कविता में मूलभूत विभाजक रेखा आप कहां खींचना चाहेंगे?

मैं यह मानता हूं कि बड़ों की कविता लिखने और बच्चों की कविता लिखने में जमीन-आसमान का फर्क है। जब हम बड़ों की कविताएं लिखते हैं तो वह हम आत्माभिव्यक्ति के लिए लिखते हैं लेकिन जब बच्चों के लिए कविता लिखना होता है तो उसमें आत्माभिव्यक्ति तो की नहीं जा सकती। बाल कविताएं लिखते समय तो बड़ों को अपने बचपन को पुनर्जीवित करना पड़ता है। उनकी रुचियों, अपेक्षाओं, मांगों को ध्यान में रखते हुए स्वयं बच्चा बनना पड़ता है। इसलिए बाल कविताएं या बच्चों का साहित्य लिखते समय अधिक, धैर्य, अधिक साधना और अधिक दक्षता की जरूरत पड़ती है।

एक तरह से यह परकाया प्रवेश की दक्षता है?

बिल्कुल ! मैं तो जब बच्चों की कविताएं लिखता हूं तो निपट बच्चे की तरह महसूस करता हूं और अपने को एक गिलहरी की तरह पेड़ पर कूदता हुआ पाता हूं। बड़ों की कोई भी मानसिकता उस समय मुझ पर हावी नहीं होती। उस समय मैं उस भावभूमि पर सोच रहा होता हूं जिस पर मेरी पोती या मेरी लड़की छोटी उम्र में सोचती थी। उसकी मनःस्थिति में उतरकर या स्वयं अपने बचपन की स्मृतियां ताजा करते हुए मैं बाल कविता लिखता हूं।

कुछ ऐसे बाल कवियों के नाम लेंगे जो आपके प्रेरणास्रोत रहे हों या जिनकी बाल कविताएं आपको प्रिय रही हों?

हालांकि जैसा मैंने कहा, बड़े लेखकों ने जो बाल कविताएं लिखीं, उन सभी को हम श्रेष्ठ बाल कविताएं नहीं मान सकते। लेकिन उन बड़ों में कुछ अवश्य ऐसे हैं जिनका योगदान बाल कविताओं के क्षेत्र में अपूर्व है। उनमें से मैं सोहनलाल द्विवेदी का नाम बड़े आदरपूर्वक लेना चाहूंगा। और भी कुछ लोग हैं जिन्होंने बाल कविता का मार्ग प्रशस्त किया। समकालीन हिंदी बाल कवियों में दामोदर अग्रवाल, राधेश्याम प्रगल्भ, शेरजंग गर्ग, सूर्यभान गुप्त हैं । और भी कुछ नाम हैं जो फिलवक्त मेरे जेहन में नहीं आ रहे हैं।

आज समकालीन हिंदी बाल कविता के सामने सबसे बड़ा संकट आपको क्या नजर आता है?

बाल कविता या बाल-साहित्य के सामने आज वही संकट है जो बड़ों के साहित्य के सामने भी उपस्थित हुआ है। उसका कारण यह है कि बच्चों की रुचियां बदल रही हैं, उनका परिवेश बदल रहा है। जो बिंब, जो चीजें कल बच्चों को आकर्षित करती थीं, वे आज आकर्षित नहीं करतीं इसलिए वे बच्चों की कविताओं का विषय भी नहीं बन पातीं। कल तक बच्चों के आदर्श पुरुष, मान लीजिए, जवाहरलाल नेहरू या महात्मा गांधी थे और आज उनकी जगह 'बेट मैन' या 'सुपर मैन' ने ले ली तो बाल कविता क्या करेगी? पहले बच्चों की कल्पना में परियां थीं, राक्षस थे, राजा थे, रानी थी, फल-फूल थे, तितलियां थीं जिनमें उनकी रुचियां थीं पर अब उनमें बहुत परिवर्तन आया है। जितनी अच्छी बाल कविता पहले 'आम' पर लिखी जा सकती थी उतनी अच्छी कविता आज 'चाकलेट' या 'चोक बार' पर लिखी जा सकती है, इसमें संदेह है। नेहरू जी या गांधीजी की जगह 'माइकल जेक्सन' पर आप अच्छी कविता कैसे लिख लोगे, भैया? तो यह आज की बाल कविता के सामने संकट है। और यह संकट सिर्फ आज का नहीं है। कविता के क्षेत्र में ऐसा संक्रांति काल हर समय आता है जब पुरानी छवियां दूर होती जाती हैं और नई छवियां उभरने लगती हैं। उन नई छवियों को समाज या लेखक जब तक आत्मसात नहीं कर पाता तब तक उन छवियों या बिंबों को लेकर लिखी गई कविता में जीवन की रसधारा से जुड़ने की बात नहीं आ सकती।

पर आपने तो अपनी बाल कविताओं में आधुनिक बोध को आत्मसात करने की सफल कोशिश की है। जैसे 'चंदा मामा कहो तुम्हारी शान पुरानी कहां गई' वाली कविता है या 'दुनिया गई–पुरानी' अथवा 'नई बात सोचा करते हैं' जैसी बाल कविताएं हैं ?

हां, कुछ ऐसे प्रयोग मैंने किए हैं जो बच्चों द्वारा स्वीकृत भी हुए हैं। मैं यह तो नहीं कहूंगा कि आज के कवियों में प्रतिभा की कमी है लेकिन चूंकि परिवेश बदल गया है और निरंतर बदल रहा है तो इस बदलते परिवेश को आत्मसात करने में बाल कविता को भी समय लगेगा। एक और बात मैं यहां जोड़ना चाहूंगा...। बाल कविता बच्चों के लिए ही होनी चाहिए। अगर किसी कविता को बच्चे 'एक्सेप्ट' नहीं करते तो वह कितनी ही प्रयोगधर्मा अथवा कलात्मक क्यों न हो, मैं उसे अच्छी बाल कविता मानने को तैयार नहीं हो सकता।

बाल कविताओं में उपदेशात्मक तत्व को आप कितना सार्थक अथवा निरर्थक मानते हैं?

देखिए, अच्छी बाल कविता की सबसे पहली और सबसे बड़ी शर्त तो यही है कि उसे मनोरंजक होना चाहिए और साथ ही उसमें कोई सार तत्व या 'संदेश' अवश्य होना चाहिए। इसे आप कोरी उपदेशात्मकता के अर्थ में न लें।

बाल कविताओं में छंद और लय को कितना महत्व देते हैं आप?

मैं तो बाल कविताओं में छंद और लय को सबसे ज्यादा महत्व देता हूं हालांकि भाषा की सहजता भी महत्वपूर्ण है। बाल कविता में छंद और तुक का दोष सर्वथा अक्षम्य है, ऐसा मैं मानता हूं। □

यह कदंब का पेड़

सुभद्राकुमारी चौहान

यह कदंब का पेड़ अगर मां होता यमुना तीरे,
मैं भी उस पर बैठ कन्हैया बनता धीरे-धीरे।

ले देतीं यदि मुझे बांसुरी तुम दो पैसे वाली,
किसी तरह नीची हो जाती यह कदंब की डाली।

तुम्हें नहीं कुछ कहता पर मैं चुपके चुपके आता,
उस नीची डाली से अम्मां ऊंचे पर चढ़ जाता।

वहीं बैठ फिर बड़े मजे से मैं बांसुरी बजाता
अम्मां अम्मां कह बंसी के स्वर में तुम्हें बुलाता।

सुन मेरी बंसी को मां तुम कितनी खुश हो जातीं,
मुझे देखने काम छोड़कर तुम बाहर तक आतीं।

तुमको आती देख बांसुरी रख मैं चुप हो जाता,
एक बार 'मां' कह पत्तों में धीरे से छिप जाता।

तुम हो चकित देखतीं चारों ओर न मुझको पातीं,
व्याकुल-सी हो तब कदंब के नीचे तक आ जातीं।

पत्तों का मरमर स्वर सुन जब ऊपर आंख उठातीं,
मुझे देख ऊपर डाली पर कितनी घबरा जातीं।

गुस्सा होकर मुझे डांटतीं, कहतीं नीचे आ जा,
पर जब मैं न उतरता, हंसकर कहतीं 'मुन्ना राजा।

नीचे उतरो मेरे भैया, तुम्हें मिठाई दूंगी,
नए खिलौने, माखन-मिश्री, दूध-मलाई दूंगी।'

मैं हंसकर सबसे ऊपर की डाली पर चढ़ जाता,
वहीं कहीं पत्तों में छिपकर फिर बांसुरी बजाता।

बहुत बुलाने पर भी मां जब, मैं न उतरकर आता,
मां, तब मां का हृदय तुम्हारा बहुत विकल हो जाता।

तुम आंचल फैलाकर अम्मां, वहीं पेड़ के नीचे,
ईश्वर से कुछ विनती करतीं, बैठी आंखें मीचे।

तुम्हें ध्यान में लगी देख मैं धीरे-धीरे आता,
और तुम्हारे फैले आंचल के नीचे छिप जाता।

तुम घबराकर आंख खोलतीं, पर मां खुश हो जातीं,
जब अपने 'मुन्ना राजा' को गोदी में ही पातीं।

इसी तरह कुछ खेला करते हम तुम धीरे-धीरे,
यह कदंब का पेड़ अगर मां होता यमुना तीरे!

चांद का हठ

रामधारी सिंह दिनकर

हठ कर बैठा चांद एक दिन
माता से यह बोला-
'सिलवा दो मां मुझे ऊन का
मोटा एक झिंगोला।
सन-सन करती हवा रात भर
जाड़े से मरता हूं।
ठिठुर-ठिठुरकर किसी तरह
यात्रा पूरी करता हूं।
आसमान का सफर, और यह
मौसम है जाड़े का।
न हो अगर तो ला दो कुर्ता ही
कोई भाड़े का।'
बच्चे की सुन बात कहा
माता ने- 'अरे सलोने!
कुशल करे भगवान, लगे मत
तुझको जादू-टोने!
जाड़े की तो बात ठीक है
पर मैं तो डरती हूं।
एक नाप में कभी नहीं
तुझको देखा करती हूं।
कभी एक अंगुल-भर चौड़ा
कभी एक फुट मोटा।
बड़ा किसी दिन हो जाता है
और किसी दिन छोटा।
घटता-बढ़ता रोज, किसी दिन
ऐसा भी करता है।
नहीं किसी की आंखों को तू
दिखलाई पड़ता है।
अब तू ही यह बता, नाप तेरा
किस रोज लिवाएं।
सीं दें एक झिंगोला, जो
हर रोज बदन में आए!'

हाथी झूम झूम झूम

विद्याभूषण विभु

घूम हाथी, झूम हाथी!
घूम हाथी, झूम हाथी!
राजा झूमे, रानी झूमे
झूमे राजकुमार।
घोड़े झूमें, फौजें झूमें
झूमे सब दरबार।
हाथी झूम झूम झूम
हाथी घूम घूम घूम
घूम झूम, झूम घूम
घूम हाथी, झूम हाथी!
धरती घूमे, बादल घूमे
सूरज चांद सितारे।
चुनिया घूमे मुनिया घूमे
घूमें राजदुलारे।
हाथी झूम झूम झूम
हाथी घूम घूम घूम
घूम झूम, झूम घूम
घूम हाथी, झूम हाथी!
राजमहल में बांदी झूमे
पनघट पर पनिहारी।
पीलवान का अंकुश घूमे
सोने की अंबारी
हाथी झूम झूम झूम
हाथी घूम घूम घूम
घूम झूम, झूम घूम
घूम हाथी, झूम हाथी!

बादल आया

शकुंतला सिरोठिया

बादल आया झूम के,
पर्वत चोटी चूम के!
इंद्रधनुष का पहने हार,
ले आया वर्षा की धार!
मेंढक राजा मगन हुए,
झिंगुरा के सुख सपन हुए!
कजरी की धुन आती है,
नन्ही चिड़िया गाती है!

शताब्दी की कुछ चुनी हुई बाल कविताएं

अगर-मगर

निरंकारदेव सेवक

अगर-मगर दो भाई थे
लड़ते खूब लड़ाई थे।
अगर मगर से छोटा था
मगर मगर से खोटा था।
अगर अगर कुछ कहता था
मगर नहीं चुप रहता था।
बोल बीच में पड़ता था
और अगर से लड़ता था।
अगर एक दिन झल्लाया
गुस्से में भरकर आया।
और मगर पर टूट पड़ा
हुई खूब गुत्थमगुत्था।
छिड़ी महाभारत भारी
गिरीं मेज-कुरसी सारी।
मां यह सुनकर घबराई
बेलन ले बाहर आई।
दोनों के दो-दो जड़कर
अलग दिए कर अगर-मगर।
खबरदार जो कभी लड़े
बंद करो ये सब झगड़े।
एक ओर था अगर पड़ा
मगर दूसरी ओर खड़ा!

लाल पालकी

आरसीप्रसाद सिंह

हाथी, घोड़ा पालकी
जय कन्हैयालाल की!
लाल पालकी, चार कहार
उस पर मौजीराम सवार।
मौजीराम लूटते मौज
जैसे लंगूरों की फौज।
लहरदार है लंबी मूंछ
ज्यों होती खरहे की पूंछ।
हाथी पर हौदे का काम
घोड़े को भी लगी लगाम।
चलता लेकर ऊंट नकेल
बंदर भालू करते खेल।
मोटरगाड़ी खाती तेल
धुआं उड़ाती चलती रेल।
मगर पालकी की है शान
बोलो भैया जय हनुमान!

अटकन-बटकन

द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी

अटकन-बटकन
दही चटोकन
बाबा लाए टॉफी
एक टॉफी टूटी
मुनिया बिटिया रूठी।

अटकन-बटकन
दही चटोकन
बाबा लाए बरफी
एक बरफी टूटी
मुनिया बिटिया रूठी।

अटकन-बटकन
दही चटोकन
बाबा लाए गुड़िया
गुड़िया आंख फूटी
मुनिया बिटिया रूठी।

टॉफी तो बहुतेरी
बरफी तो बहुतेरी
गुड़िया भी बहुतेरी
फिर क्यों मुनिया रूठी
रूठी झूठी-मूठी!

पर्वत कहता

सोहनलाल द्विवेदी

पर्वत कहता
शीश उठाकर
तुम भी ऊंचे बन जाओ
सागर कहता है
लहराकर
मन में गहराई लाओ।

समझ रहे हो
क्या कहती है
उठ-उठ गिर-गिर तरल तरंग
भर लो, भर लो
अपने मन में
मीठी-मीठी मृदुल उमंग।

धरती कहती-
धैर्य न छोड़ो
कितना ही हो सिर पर भार
नभ कहता है
फैलो इतना
ढक लो तुम सारा संसार!

मिट्ठू मामा की संगीतशाला

सरस्वती कुमार दीपक

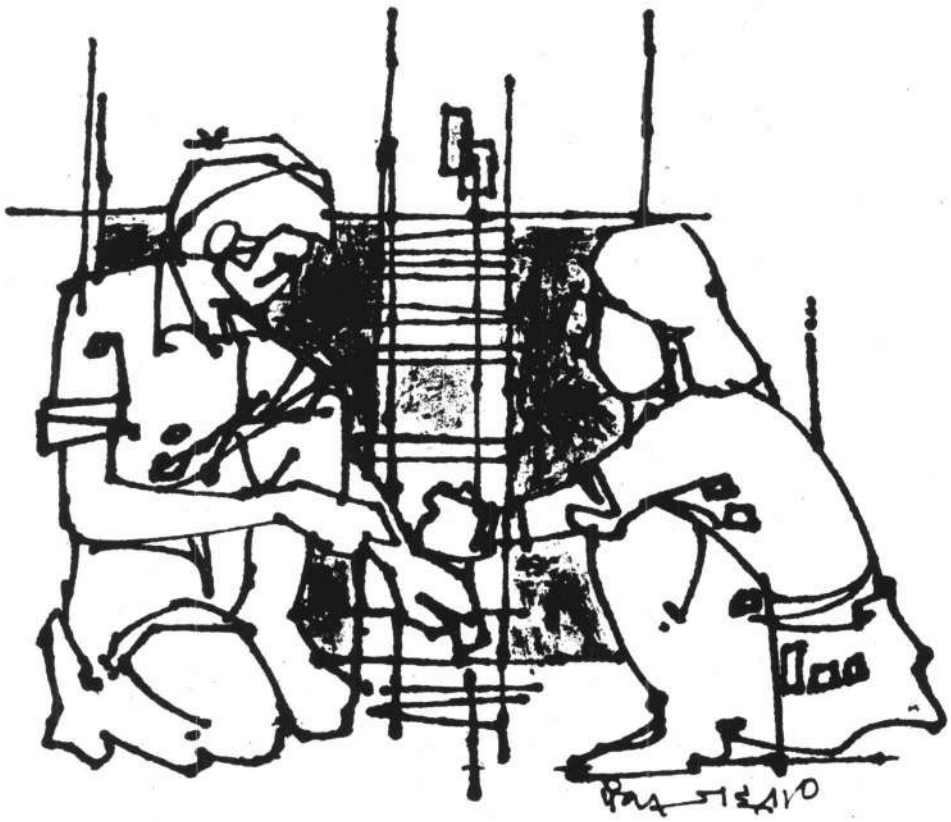
कुछ परदेसी भूल गए,
बरगद के नीचे बाजा-
बैठ गए संगीत सिखाने
अपने मिट्ठू राजा।
बाजा सुन, सारे पशु आए
बाजा सुन, पंछी मुसकाए,
मोर नाचने लगा थिरककर
कोयल ने भी गीत सुनाए,
बंदर मामा लेकर आए
केला ताजा-ताजा।
सा-रे-गा-मा की धुन न्यारी
सबको लगती थी प्यारी,
राम-राम जब मिट्ठू बोले
लगी बोलने टोली सारी,
सूंड पकड़कर भालू बोला-
'हाथी भैया आ जा!'

सबसे बढ़कर कौन?

रमापति शुक्ल

आलपीन के सिर होता पर,
बाल न होता उसके एक।
कुर्सी के दो बांहें हैं,
पर गेंद नहीं सकती है फेंक।
कंघी के हैं दांत, मगर वह,
चबा नहीं सकती खाना।
गला सुराही का पतला है,
किंतु न गा सकती गाना।
होता है मुंह बड़ा घड़े का,
पर वह बोल नहीं सकता।
चार पांव टेबिल के होते
पर वह डोल नहीं सकता।
जूते के हैं जीभ, मगर वह,
स्वाद नहीं चख सकता है।
आंखें रहते हुए नारियल,
कभी न कुछ लख सकता है।
बकरे के लंबी दाढ़ी है,
लेकिन बुद्धि न उसके पास।
झींगुर के मूंछें हैं फिर भी
दिखा नहीं सकता है त्रास।
है मनुष्य के पास सभी कुछ,
ले सकता है सबसे काम।
इसीलिए दुनिया में सबसे बढ़कर
है उसका ही नाम!

कहानी



तुलतुल का भविष्य भय

आशापूर्णा देवी

बंगला से अनुवाद : मंजू प्रियंवदा

रेखांकन : पंकज झा

स्कूल से वापस आकर तुलतुल ने आज खाना भी नहीं खाया, पार्क में भी खेलने नहीं गई। चेहरा लटकाए और आंखें लाल किए छत की सीढ़ी के दरवाजे के पास चुपचाप बैठी हुई है। इस समय यहां कोई नहीं आता। इसलिए दुख, गुस्से और मारे अपमान के तुलतुल भागकर यहीं आ गई है।

अपमान ही ज्यादा है। इसके बदले तुलतुल को यदि कोई दो चांटे मार देता तो भी अच्छा था। इससे ज्यादा और क्या होता? शरीर पर थोड़ी चोट लगती, पर इस तरह दिल तो नहीं दुखता? भैया तो इस तरह जब देखो तभी मार देते हैं। इस पर मां बोल उठती है, "ओफ्फोह बेटे, क्यों बेचारी को इस तरह पीट रहा है?"

फिर मां भी ऐसा कभी नहीं करती, ऐसी बात नहीं। बात नहीं मानने पर वह भी झट से एक थप्पड़ जड़ देती है। पर तुलतुल का वह दुख तो उसी क्षण खत्म हो जाता है। अलबत्ता तुलतुल के रोने की आवाज जरा-सी भी दादी मां के कान में पड़ जाए, तो पता नहीं कहां से वे दौड़ी चली आती हैं, और चीखने चिल्लाने लगती हैं, 'अरे रे बहू, क्यों मारा बच्ची को? आखिर उसने ऐसी कौन-सी भूल कर दी! हाय-हाय देखो तो, गाल कैसा हो उठा है बेचारी का!'

चाहे लाल न हुआ हो, फिर भी बोलती लाल है । उस समय तुलतुल की तो बस पूछो मत।

लेकिन आज? ऐसा हुआ कि आज स्कूल से आकर तुलतुल ने बैग नीचे उतारा ही था कि दादी मां बोल उठी, "देख तो, आ गई बहादुर बेटी। अब देखना बहादुरी का नतीजा। पर इससे तेरा क्या? भुगतना तो हमें ही होगा न।"

साथ-साथ मां भी उसी तरह बोल पड़ी, "हम लोग क्यों भुगतेंगे? जिसकी बहादुरी का नतीजा है वही भुगतेगी। अब तो तुलतुल ही बर्तन साफ करे, मसाला पीसे, क्योंकि उसी के कारण ही तो टूनि की मां काम छोड़कर चली गई है।

भैया ने भी हां में हां मिलाते हुए कहा, "मां सही कह रही है। उसके लिए यही उचित है। उसी से तो तंग होकर टूनि की मां-"

जी हां, सारे तुलतुल पर यह दोष लगा रहे हैं कि उससे ही परेशान होकर टूनि की मां काम छोड़कर चली गई है।

मां फिर टेबल पर खाना लगाते हुए बोली थी, "खा-पीकर मजबूत होकर काम में लग जा तुलतुल। किसी की जब बात ही नहीं मानती तो भुगत अब।"

लेकिन तुलतुल भला वह खाना क्यों खाती?

तुलतुल ने स्कूल का यूनीफार्म तक नहीं उतारा और तीर की गति से भागकर छत की सीढ़ियों पर चढ़कर बैठी हुई है। पहले तो थोड़ा रोई भी थी। इसी समय तो उसे बड़ी भूख लगती है। इसके बावजूद टेबल पर सजी प्लेटों की ओर देखे बिना उसी क्षण उसे चले आना पड़ा। तुलतुल अब और नहीं रो रही, बल्कि बैठी-बैठी सिर्फ सोच रही है- टुनि की मां को उसने भला किस बात पर 'परेशान' किया था? कल स्कूल से वापस आकर सिर्फ इतना ही तो कहा था, "टूनि की मां, इस ठंड में

टूनि को सिर्फ एक फटी हुई फ्राक पहनाकर लाई हो? फिर उससे चाय के बर्तन भी धुलवा रही हो?''

टूनि की मां बोली थी, ''सुबेरे-सुबेरे ही तो धोवत है सिरफ। ई बखत जल्दी-जल्दी सब काम जो करे के रहत है।''

''यह सुबेरे-सुबेरे क्या होता है? सुबह-सुबह नहीं बोल सकती?'' तुलतुल बोली थी, ''बहुत अच्छा कह रही हो, तुम तो कैसी मां हो तुम? पता है यह अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष है?''

और फिर टूनि की मां को बुद्धू की तरह ताकते हुए देख तुलतुल बोली, ''अरे हां, तुम तो इसका मतलब ही नहीं समझ सकोगी। तो, फिर सुनो, हम लोगों की मिस ने कहा है...''

''कऊन कहत रहा?'' टूनि की मां ने हाथ का काम रोककर पूछा।

''अरे बाबा, हमारे स्कूल की मिस ने, यानी कि आदरणीया मास्टरनी साहिबा; अरे बाबा मास्टरनी दीदी, समझीं! उन्होंने कहा है, यह जो नया साल शुरू हुआ है न, यह छोटे-छोटे बच्चों के लिए है। इस साल...''

टूनि की मां फिर घस-घस की आवाज के साथ कढ़ाई मांजती हुई बोली, ''लो सुनो ई लड़की की बात। बरस का कोई खेलर का पुतुल है कि रसगुल्ला, जो छोटन-छोटन बच्चन का हुइ गवा? बरस होवत है, पंजिका का।''

अब तुम्हीं बताओ, इस तरह बुद्धू की-सी बातें सुनकर भला गुस्सा किसे नहीं आएगा? फिर भी तुलतुल ने उसे कुछ भी उल्टा-सीधा नहीं कहा, बाल भी नहीं खींचे, यहां तक कि उसके शरीर पर थोड़ा-सा भी पानी नहीं छिड़का। ऊंची आवाज में सिर्फ इतना ही कहा था, ''तुम तो बिल्कुल ही बुद्धू हो। कह रही हूं कि मिस ने कहा था कि इस साल से छोटे-छोटे बच्चों को और भी ज्यादा देखभाल और प्यार-दुलार करना होगा, बढ़िया जूते, कपड़े पहनाने होंगे, पढ़ना-लिखना सिखाना होगा, कोई रोग-वोग न हो इसका भी ध्यान रखना होगा, उनसे उल्टे सीधे काम करवाना अब नहीं चलेगा, समझीं!''

टूनि की मां थोड़ा हंसकर बोली, ''हां समझी।'' कहकर अपनी बेटी की तरफ देखकर बोली, ''मुंह बाकर बात सुनै का जरूरत नाहीं, जल्दी-जल्दी ई सब काम निपटाना।''

इस पर तुलतुल भला गुस्से से क्यों नहीं बोलगी, ''खाक समझीं! कुछ भी नहीं समझीं। खबरदार टूनि, पानी को अब और हाथ मत लगाना। इस कड़ाके की ठंड में उस बर्फ जैसे पानी से चाय के बर्तन धोए जा रहे हैं। बड़ी चली है गृहणी बनने। रख दे नीचे, कहती हूं। ...मां, जरा टूनि को एक गरम कपड़ा तो देना जल्दी, देखो तो कैसे बेचारी ठंड के मारे ही-ही ही-ही कर रही है।''

सुनकर मां अपनी आंखें आसमान की ओर ऊपर उठाकर पता है, क्या बोली? बोली, ''गरम कपड़े! अच्छा-अच्छा-आ जा गरम कपड़े आ जा। टप से ऊपर से गिर जा। टूनि के नाप की।''

तो इसका मतलब उपहास किया जा रहा है।

तुलतुल को यह जरा भी अच्छा नहीं लगा।

तुलतुल ने कड़ी आवाज में कहा, ''मतलब मेरे छोटे हो गए फ्राक, स्वेटर कुछ भी नहीं हैं? क्या वे सब टूनि को फिट नहीं होते?''

''अरे बाबा, बहुत सारे दिए गए हैं, नहीं पहनाती तो क्या करूं?''

''नहीं पहनाती?'' तुलतुल अवाक रह गई।

''टूनि की मां! क्यों नहीं पहनातीं, जरा मैं भी तो सुनूं?''

टूनि की मां नाराज स्वर में बोली, ''पहराया तो रहा पर साल। फिर मैला होए पर धोवन की खातिर गरम पानी में डाला रहा, मुए सबके सब गल गवा।''

तुलतुल की मां बोली, ''ऊनी कपड़ों को तूने गरम पानी में डाल दिया? कमाल है! चल आ जा तुलतुल खाना खाने, अब और बकबक करने की जरूरत नहीं है।''

पर तुलतुल भला क्यों सुनने वाली?

''मिस ने कहा था कि- हमारे घरों में जो लोग काम करती हैं, यानी कि बर्तन मांजती हैं, कपड़े धोती हैं, घर साफ करती हैं, सिर्फ उनके बच्चों को ही हम थोड़ा स्नेह भरी आंखों से देख लें, अगर थोड़ी कोशिश करें जिससे वे थोड़ा अच्छा खा-पी सकें, ठंड में कपड़े पहन सकें, पढ़ना-लिखना सीख सकें, रोग-वोग होने पर दवा पा सकें- तभी हम इस दुनिया के किसी काम आ सकते हैं। यद्यपि तुम लोग अभी छोटे हो, फिर भी अभी से ही ऐसा महसूस करना सीखो जिससे दुनिया के किसी काम आ सको। याद रखो, सारे मनुष्य बराबर हैं। सारे छोटे बच्चों को प्यार और देखभाल पाने का अधिकार है।''

अब बोलो, मिस के इस कहे के अनुसार क्या तुलतुल चलने की कोशिश नहीं करेगी?

टूनि तुलतुल से भी छोटी है। देखने में भी दुबली-पतली- वह उस ठंडे पानी में हाथ डाल-डालकर काम करेगी और तुलतुल गरम पानी में मुंह-हाथ धोकर, गरम कपड़े पहनकर खुशी-खुशी फूली हुई कचौड़ियां खाएगी भला?

असल में रोज ही तो ऐसा होता है। तुलतुल देखती भी है लेकिन उसे पता नहीं था कि यह सब इतना गलत है। घर के बड़े लोग भी तो वैसे ही हैं। तुलतुल के लिए तो गरम-गरम कचौड़ियां और टूनि के लिए सूखी-सूखी रोटियां। कुछ बोलो तो दादी मां कहती हैं, ''चुप रह, ज्यादा सयाना बनने की कोशिश न कर।''

पर घर के बड़े लोगों को अब और ऐसा करने नहीं देगी तुलतुल। अब उसकी समझ में आ गया है कि ऐसा करना बहुत खराब है। इस अंतर्राष्ट्रीय वर्ष में बेचारी टूनि जैसे बच्चों को ही देखभाल करने की जरूरत है। उनकी मांएं तो लोगों के घरों में काम करने चली जाती हैं, बेटे-बेटियों के लिए भला कब घर जाकर कचौड़ियां बनाएंगी।

जबकि तुलतुल जैसी लड़कियों की?

यहां तो ब्राह्मण रसोइया ही सब करता है। थोड़ा-सा ज्यादा मैदा नहीं गूंथ सकता वह?

यही सोचकर तुलतुल चिल्लाकर बोली, ''आ रही हूं, तुम खाना निकालो तो सही। ऐ टूनि, आ मेरे साथ कचौड़ियां खाएगी?''

सुनकर मां वहीं से बोली, ''अरी तुलतुल, देर क्यों कर रही है। उसे मैं कचौड़ियां अभी दे रही हूं, पहले तू खा तो सही!''

''क्यों? मैं पहले क्यों खाऊंगी?''

''वाह! तू अभी-अभी जो स्कूल से आई? अच्छा बाबा, उसे भी देती हूं, तू बैठ तो।''

टूनि की मां भी बोली, ''जा मुन्नी, देर होये पर मांजी डांटेंगी। आज लागत है भूख नाहीं लगी? टूनि तू तब तलक कुछ कोयलिया तोड़ देवा, जामे हम सुबेरे का चूल्हा सजाय दे।''

अब तुम्हीं बताओ। इसके बाद भी तुलतुल टूनि की मां के शरीर पर थोड़ा-सा पानी छींटे बिना रह सकती थी भला! फिर थोड़ा-सा ही तो छींटा था। पहले तो ऐसा कई बार किया था, नाराज तो कभी नहीं हुई? हर बार हंस देती थी।

इसके बाद तुलतुल जरूर टूनि के हाथ से कोयले तोड़ने वाली हथौड़ी छीनकर फेंकती हुई बोली थी, "मां की बात बिल्कुल नहीं सुनना टूनि! यह बाल वर्ष है समझी? इस बाल वर्ष से छोटे बच्चों के लिए ये सब काम बंद।...अब तू, और सुबह-सुबह डिपो से दूध लेने नहीं जाएगी, अपनी मां के साथ सड़े गोबर के उपले भी बनाने नहीं जाएगी। समझ रही है न? दिमाग में कुछ घुसा भी या नहीं?

इसके जवाब में बेवकूफ टूनि जानते हो क्या बोली? बोली, "हथौड़ी दे दो दीदी, नहीं तो मां डांटेगी।"

"अरे वाह! ऐसे ही डांटेगी! मिस से शिकायत कर दूंगी फिर देखना मजा! ...अरे! अभी भी खड़ी है। आ, कहती हूं।"

इतना कहकर टूनि का हाथ पकड़कर धड़-धड़ करके खींचती हुई तुलतुल उसे डाइनिंग रूम में ले आई। कहीं कोई चोट भी नहीं लगी थी फिर भी बेवकूफ रो पड़ी थी। असल में डांट खाने के डर से- तुलतुल क्या इतना भी नहीं समझती?

इस पर उसकी मां जल्दी-जल्दी बर्फी के एक खाली डिब्बे में चार-पांच कचौड़ियां, थोड़ी आलू की भाजी और थोड़ा-सा गुड़ डालकर टूनि के हाथ में देकर बोली, "जा टूनि, मां के पास जाकर खा ले।"

टूनि मानो वहां से भागकर बच गई। तुलतुल की तो इच्छा नहीं थी, पर उस समय उसे भी बड़ी भूख लग गई थी, इसलिए खाने पर बैठ गई। पर मां ने जब तुलतुल को अंडा फ्राई करके दिया और मछली की तरी दी तब उसने मन ही मन फैसला कर लिया कि अगर कल से मां ने टूनि को भी यह सब कुछ नहीं दिया तो तुलतुल भी नहीं खाएगी।

कह भी दी मां से उसने यह बात-"मैं तो इतनी मोटी हूं, फिर भी मुझे इतना-इतना खाने को देती हो और टूनि जो बिल्कुल गौरैया की तरह है, उसे कुछ भी नहीं देती। पता है, यह बाल वर्ष है?"

मां बोली, "जानती हूं। अब और बकबक नहीं करना है। इस लड़की के सिर पर जाने कैसा यह एक भूत सवार हो गया है!"

लेकिन भूत जब सवार हो ही गया है तो क्या किया जाए?

खाना खाकर उठकर तुलतुल ने देखा, टूनि और टूनि की मां अपने घर जा रही हैं। उस समय डांटकर नहीं, बल्कि प्यार से ही तुलतुल ने कहा था, "कल से ये सब बेकार के काम अब और नहीं करना। मेरे पापा कल स्कूल में तुम्हारा नाम लिखवा देंगे।"

यह भी क्या टूनि की मां को 'तंग' करने वाली बात हुई?

जाकर पापा को धर पकड़ा, तो पापा बोले, "सही कह रही है तू। ऐसा किया भी जा सकता है। आजकल तो स्कूलों में फीस भी नहीं लगती, किताबें भी मुफ्त मिलती हैं; फिर टिफिन भी फ्री मिला करेगी।"

"सच, पापा!"

"हां री मुन्नी। आजकल यही कानून बन गया है।"

"फिर तो टूनि भी गणित के सवाल कर सकेगी, पापा!"

"क्यों नहीं कर सकेगी? सीखने पर जरूर सकेगी। माने, सिखाने से ही कर सकेगी।"

"किताब भी पढ़ सकेगी!"

"जरूर पढ़ सकेगी, यह लड़की बुद्धू नहीं है।"

तुलतुल गंभीर भाव से दुखी होकर बोली, "टूनि की मां लेकिन बिल्कुल बुद्धू है, पापा! इतनी छोटी-सी लड़की से बर्तन मंजवाती है, कोयले तुड़वाती है। घर पोंछवाती है, जबकि स्कूल जाने पर टूनि भी हम लोगों की ही तरह हो जाएगी। है न टूनि की मां बुद्धू, पापा?"

"बिल्कुल है। और करेगी भी क्या वह? खुद तो पढ़ाई-लिखाई की नहीं, समझ कहां से आएगी?"

"बड़े लोगों को भी पढ़ना-लिखना सिखाने वाला एक स्कूल है न, पापा?"

"है क्यों नहीं?"

"फिर तो टूनि की मां का भी नाम वहां लिखवा देना पापा, थोड़ी समझ आ जाएगी।"

पापा हंसकर बोले थे, "यही ठीक रहेगा। कल सुबह, जैसे ही वे लोग आएंगे, मां-बेटी दोनों को साथ में ले जाकर स्कूल में नाम लिखवा दूंगा।"

तुलतुल मारे खुशी के लगभग नाच ही उठी थी। सच, पापा कितने अच्छे हैं। घर में सबसे अच्छे हैं!...पर एक दोष है, सारी बातें दादी मां को जरूर बताएंगे। उसी समय हंसते हुए पापा ने आवाज लगाई, "ओ मां, सुन रही हो-अपनी पोती का हुक्म?..."

बात पूरी भी नहीं हुई कि तुरंत ही दादी मां के गले की आवाज सुनाई पड़ी, "ज्यादा सरदारी करने की जरूरत नहीं है तुलतुल। जितने में है, उतने ही में रह। आजकल पता नहीं दिमाग में यह कौन-सा कीड़ा घुसा लाई है।"

"हर बात दादी मां से क्यों बोल देते हो, पापा? तुममें यही एक दोष है।"

पापा हंसकर बोले, "वाह, तुम अपनी सारी बातें मां को नहीं बतातीं?"

"तो क्या हुआ, मैं तो छोटी हूं!"

"मां के सामने तो सारे छोटे होते हैं।"

कहकर पापा हंसते हुए चले गए।

पर तुलतुल सोचने लगी, क्या मां के सामने सभी छोटे होते हैं? फिर टूनि की मां टूनि को कोयले तोड़ने को क्यों कहती है? यदि सचमुच में छोटा समझती तो क्या कहती?

असल में टूनि की मां मूर्ख है। तभी ऐसा कहती है।

स्कूल में पढ़ने पर, मिस के उपदेश सुनकर उसे जरूर समझ आ जाएगी।

लेकिन यह तो एक और समस्या खड़ी हो गई- टूनि की मां स्कूल जाएगी क्या पहनकर? टूनि के लिए तो मां को तंग कर करके एक फ्राक और स्वेटर किसी तरह जुगाड़ कर लिया है उसने, पर उसकी मां के लिए तो...।

इसके बाद मन में सोचकर देखा, बड़ों के

लिए शायद यूनीफार्म पहनने का नियम नहीं होगा। अगर हुई तो इसके लिए भी मां को तंग करेगी वह।

ओह! कल सचमुच बड़ा मजा आएगा। तुलतुल कल स्कूल जाते ही मिस को बता सकेगी, मिस मैंने आपकी बात पर अमल कर लिया है। हमने अपने घर में काम करने वाली की बेटी को. .. ही ही ही ही... और उसकी मां को भी... स्कूल में...

ही ही ही ही करके वह अभी ही हंस दी।

मिस के सामने हंसना ठीक नहीं होगा। वहां तो उस समय गंभीर शांत होकर भद्रता के साथ बात करनी होगी।

रात को सोने के समय बड़े ही खुश मन से सोने गई तुलतुल। हां, जाने से पहले वह कई बार मां को याद दिला गई–

''मेरे साथ टूनि को भी जल्दी ही भात खाने के लिए बैठा देना, मां! टूनि की मां उसे कभी भी ठीक समय पर भात नहीं देती। बुद्धू जो ठहरी! मां. ..टूनि को भी अच्छी-अच्छी चीजें खाने में देना, समझीं !''

मां नाराज होकर बोली थी, ''समझी भई समझी, पूरी तरह समझ गई, अब जरा बकबक बंद करके मेहरबानी करके सोएगी भी?''

और तुलतुल उसी वक्त सो गई।

फिर सोते-सोते सपने देखने लगी– क्लास में जाकर बोल रही है, 'मिस, मैंने आपकी बात पर अमल कर लिया है।'

ओ मां ! सुबह उठते ही यह क्या? देखती है कि सब कुछ रोज की तरह ही चल रहा है! पापा की ओर से उन दोनों को स्कूल ले जाने की कोई तैयारी ही नहीं हो रही! पापा घर पर हैं ही नहीं, बाजार गए हुए हैं। और टूनि, वहीं-कहीं फ्राक पहने चाय के बर्तन धो रही है। चाय के बर्तन भी तो ढेर सारे हैं।

तुलतुल उसके बाद टूनि को नल के नीचे से खींचती हुई अपने पास लाकर बोली थी, ''याद है, कल मैंने क्या कहा था?''

इस पर टूनि ने बुद्धू की तरह अपनी मां की ओर देखा था। उसकी मां बोली थी, ''अरे बाबा, ई मुन्नी को का हुई गवा है? कहीं माथा-वाथा तो



फोटो : शमशेर अहमद खान

नाहीं खराब हुई गवा।''

तुलतुल भागते हुए ऊपर के कमरे में जाकर कल शाम को मां के पास से जो कपड़े लिए थे, उन्हें लाकर टूनि को पहनने का हुक्म देते हुए बोली–''पापा के आते ही स्कूल जाएगी, समझी! और इसके पहले मेरे साथ भात खा लेगी, याद रहेगा न?''

अब इसे क्या टूनि की मां को 'परेशान' करना कहना चाहिए?

उसे तो उस समय स्कूल जाने के लिए नहीं कहा गया था! फिर?

खाना खाते समय टूनि को नहीं देखने पर तुलतुल उसे आवाज लगाने लगी। इस पर दादी मां बोली थी, ''वह अभी घर गई है, अपने बाप से पूछने।''

''क्या पूछने?''

''वाह, स्कूल जाना है कि नहीं, अपने बाप से नहीं पूछेगी! तुम्हारे कहने से ही होगा? इसलिए टूनि की मां बर्तन-वर्तन छोड़कर पूछने गई है।''

बात तो उचित है। पर आशंका भी है। उसके पिताजी कहीं मना न कर दें। उन लोगों का कोई भरोसा नहीं। वही तो, उस समय टूनि की मां कह रही थी–''हम सब गरीब लोगन के बच्चन अगर लिखा-पढ़ी करे लागैं तो हमार काम कैसे चलिहें?''

फीस नहीं लगेगी, किताब खरीदने पर पैसे भी नहीं लगेंगे, सुनकर वह चुप हो गई थी। ... यह बात वह जरूर घर पर कहेगी।

तुलतुल जब जूते-मोजे पहन रही थी तभी पिताजी बाजार से लौट आए। तुलतुल बोल पड़ी, ''ओफ्फोह पापा! तुम सचमुच में बड़े डेंजरेस हो! (तुलतुल को पापा यह बात अक्सर बोलते हैं) इतनी देर लगा दी! ...और देखो, टूनि भी देर कर रही है। उसे आते ही स्कूल ले आना। पर 'भव तारिणी बालिका विद्यालय' में मत ले जाना, पापा! एक स्कूल यहीं पास में है। पता है पापा, यहां जूते-मोजे नहीं पहनकर जाने पर भी अंदर जाने देते हैं। बेचारी टूनि के पास तो यह सब कुछ भी नहीं है। वह जब पास कर लेगी तब उसे जूते-मोजे खरीद देना। खरीदोगे न पापा? उस बेचारी के पिताजी के पास ज्यादा पैसे नहीं हैं, तभी नहीं खरीद पाते। तुम खरीद दोगे न पापा?''

इस प्रश्न के उत्तर की वसूली नहीं की जा सकी। कारण, स्कूल की बस आ गई थी।

...और अब बस से उतरते ही सुनना पड़ा कि टूनि की मां ने तुलतुल से तंग आकर काम छोड़ दिया है। वही जो, सुबह बर्तन-वर्तन मांजकर गई फिर वापस नहीं आई। पास के मकान की सुखदा उसके मुहल्ले में रहती है, उसे भेजा था मां ने। कहलवाया है, इस घर में वह अब और काम नहीं करेगी।

इसका मतलब, टूनि के पापा से पूछने जाना सिर्फ बहाना था? स्कूल के डर से भाग गई! आश्चर्य है! कैसी मूर्ख है!

टूनि तो टूनि की मां की सगी बेटी है। फिर? सुबह-सुबह ठंड में कांपते हुए काम करने के बदले टूनि अगर झकझक सफेद रंग की पोशाक पहने तुलतुल के संग आलू-भाजी, भुनी मछली और हाफबायल्ड अंडों के साथ भात खाकर स्कूल जाती तो क्या नुक्सान हो जाता?

ऐसी ही ऊल-जलूल बातें सोचती रही तुलतुल! सब कहते जरूर हैं कि बड़े होने पर अक्ल आती है! खाक आती है! सब बेकार की बात है। बल्कि बड़े होने पर अक्ल घट जाती है। उलट-पुलट हो जाती है।

ये सब बड़े ही तो हैं? कोई भी तो टूनि की मां की बेवकूफी को दोष नहीं देता, दोष दे रहे हैं तो तुलतुल की नादानी को। जबकि इन लोगों में से कोई भी अनपढ़ नहीं है। इनको अच्छी तरह पता है कि बाल वर्ष में क्या-क्या होता है, बच्चों के लिए क्या करना उचित है। रोज ही तो अखबारों में पढ़ते हैं।

असल में बड़े लोगों की बातों का कोई ठीक नहीं होता। वे लोग कभी कुछ कहते हैं तो कभी कुछ और ।

सारे ही एक जैसे हैं।

वही तो! उस बार जलपाईगुड़ी में नानाजी ने तुलतुल को एक किताब खरीदकर दी थी– *दयासागर विद्यासागर* । पता है, क्या कहा था देते समय? कहा था, "महान लोगों की जीवनियां पढ़ना, तुलतुल! जितना हो सके उन्हें पढ़ना, समझीं! पढ़ना और फिर उनके आदर्शों पर चलना।"

पर यह क्या! उसके कुछ ही दिनों बाद जलपाईगुड़ी में काफी ठंड पड़ने लगी। एक गरीब लड़का पुरानी एक कमीज मांग रहा था। इस पर तुलतुल ने अपना कार्डीगन उतारकर उसे दे दिया। इस पर नानू ने इतना डांटा, इतना डांटा कि पूछो मत– पागल हो गई है। दिमाग खराब हो गया है!' और न जाने तुलतुल को क्या-क्या कहा गया था। क्यों? क्या विद्यासागर अपने कपड़े, चादर उतारकर गरीब लोगों को नहीं दे देते थे?

हालांकि इसके बाद नानू ने मजाक में हंसते हुए कहा–"अब कान पकड़ता हूं बाबा, अब और किसी को विद्यासागर की जीवनी खरीदकर नहीं दूंगा। देखो जरा, लड़की ने उस नए कीमती कार्डीगन को रास्ते के भिखारी को दे दिया!"

अब तुम्हीं बताओ, भला रास्ते के भिखारी को नहीं दूंगी तो क्या अमीर लोगों के बच्चों को दूंगी? देने पर लेंगे वे लोग? फिर तुलतुल उनको देने ही क्यों जाएगी भला? उनके पास नहीं हैं क्या?

तभी तो कहती हूं कि बड़े होने पर बुद्धि उलट-पुलट हो जाती है। सोचते-सोचते उत्तेजित हो गई तुलतुल। एक ओर तो कहा जाता है– 'जीवों पर दया करनी चाहिए!' किंतु एक दिन जब रास्ते पर से एक कुत्ते के बच्चे को घर लाकर तुलतुल ने पालना चाहा तो घर के सारे के सारे उस पर टूट पड़े थे– "जाकर इसे फेंक आओ। दूर ले जाकर कहीं इसे छोड़ आओ। कितना गंदा पिल्ला है! छि: छि:!"

लो अब समझ लो। तुम्हीं बोलो, 'जीवों पर दया करो' का आखिर और क्या मतलब होता है?

तो क्या घरों में प्यार-दुलार से पले कुत्ते, बिल्लियों पर दया करने जाएगी तुलतुल?

नीचे से भैया के गले की आवाज सुनाई पड़ी, "अरी तुलतुल, आकर खाना खा ले। छत पर जाकर क्यों बैठी हुई है?"

तुलतुल का मन विचलित हो गया। पेट के अंदर भूख के मारे जाने कैसी ऐंठन-सी हो रही थी, पर तुलतुल दृढ़तापूर्वक बैठी रही। इतने से ही टूट जाएगी वह?...मिस ने कहा है–'कितने ही बच्चों को दोनों वक्त भरपेट खाना तक नहीं मिलता !'

भैया ने फिर आवाज लगाई, "बर्तन मांजने के डर से नीचे नहीं आ रही क्या? ही ही ही ही– रहने दे, इतना डरने की जरूरत नहीं है, तुम्हारी सजा माफ की जाती है!"

तुलतुल ने चिल्लाकर कहना चाहा, 'किस बात की सजा? मैंने क्या कोई गलती की है?' ..लेकिन कह नहीं पाई। गला मानो बंद हो गया हो।

इसके बाद दादी मां की आवाज आई "ऐ तुलतुल, कचौड़ियां ठंडी हुई जा रही हैं, भाई!"

तुलतुल चेहरे को सख्त किए बैठी रही। ठीक इसके बाद ही मां आई।

"यह क्या मजाक हो रहा है? तुझे क्या कोई सचमुच में कपड़े धोने और बर्तन मांजने के लिए कह रहा है? ऐसी ठंड में काम करने वाली के छोड़ जाने पर कितनी परेशानी होती है, तुम्हें पता है? तुम्हें भला कोई शौक से डांटा गया है? अब उठ भी। चल खाने। और नखरे दिखाने की जरूरत नहीं है।

दादी की पुकार पर चेहरे पर दृढ़ भाव होने के बावजूद, दिल कुछ कुछ पिघलने-सा लगा था, पर मां की बात सुनकर फिर सख्त हो गया। 'नखरे' कर रही है वह? उसके दिल में कष्ट नहीं हो रहा क्या?

गुस्से से बोली, "नहीं जाती, जाओ! खाना भी नहीं खाती।"

"ठीक है। आने दो तुम्हारे पापा को, फिर देखेंगे लाड़ली बेटी को ज्यादा सिर पर बिठाने का नतीजा। कहा गया– सचमुच में टूनि को स्कूल में डाल दो। ऐसा करने पर सिर्फ उसकी मां से होगा घर का इतना सारा काम! टूनि अपनी मां की कितनी मदद करती है, पता है?"

तुलतुल की आवाज अचानक ऊंची हो गई– यही तो गलत बात है। मिस ने कहा है– छोटे बच्चों से काम करवाना पाप है। समझीं! तुम सभी पापी हो!"

पर मां यह भयानक बात सुनकर भी नहीं डरी। बल्कि हंसती हुई बोली–"अरे क्या करूं, तू ही बोल। पापियों की दुनिया में पैदा हुई हूं, तभी तो पापी बन गई हूं। इस पृथ्वी को उलटकर एकदम शुरू से बदल देने की औकात मुझमें कहां ? पर ऐसा यदि नहीं किया गया तो दूसरा कोई रास्ता भी नहीं दिखता ।...तू बड़ी होकर बदल देना इसे; तू और तेरी सहेलियां मिलकर। तुम लोग हमारी तरह पाप मत करना।"

यह क्या! इतना सुनते ही न जाने क्या हुआ।

कहीं भी कुछ नहीं हुआ! तुलतुल फूट-फूटकर रो पड़ी और मां से कसकर लिपट गई। बोली–"अगर मैं भी बड़ी होकर तुम लोगों की तरह ही कुछ और सोचने लगी, तो! अगर नादान बन गई, तो! अगर भूल गई कि सारे मनुष्य समान हैं, तो ! □

'पगला सांड पड़े पीछे तो कैसे करें बचाव !'

इस शताब्दी के बंगला बाल-साहित्य की चर्चा करते हुए सुविख्यात बंगला बाल-साहित्यकार सुकुमार राय के कृतित्व का परिचय दे रही हैं स्मृति गुप्ता

रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था-'एक मौसम ऐसा आता है जब धान के खेतों के लिए बरसात बहुत जरूरी होती है। समय निकल जाने पर कितनी भी बारिश क्यों न हो, उसका सुफल नहीं मिलता। उम्र बढ़ने का भी ऐसा एक मोड़ आता है जब उच्छल भावनाएं तथा नवीन कल्पनाएं जीवन को एक सांचे में ढालती हैं- जीवन को सरसता तथा परिपूर्णता की ओर ले चलती हैं। ठीक उसी समय साहित्य के आकाश से भारी बरसात हो जाए तो देश धन्य हो जाते हैं।' बंगला बाल-साहित्य के आकाश से भी निश्चित रूप से उपयुक्त समय पर पर्याप्त वर्षा होती रही है।

बंगला बाल-साहित्य के आकाश में भिन्न-भिन्न समय पर अनगिनत सितारों का उदय हुआ। गोलकनाथ शर्मा के *हितोपदेश*, अक्षय कुमार दत्त के *चारुपाठ* तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर के *बोधोदय, कथामाला, बत्तीस सिंहासन* एवं *वर्ण परिचय* से बंगला बाल-साहित्य का प्रारंभिक युग माना जाता है। ईश्वरचंद्र विद्यासागर की काव्य-पंक्ति 'जल परे, पता नरे' (पानी पड़े, पत्ता हिले) रवींद्रनाथ ठाकुर के बचपन में प्रेरणा का स्रोत बनी रही।

तत्कालीन अन्य बंगला बाल-साहित्यकार थे- मृत्युंजय विद्यालंकार, शिवनाथ शास्त्री तथा स्वर्ण कुमारी देवी। इसके बाद ही प्रारंभ होता है बंगला बाल-साहित्य का स्वर्ण-युग। इस युग के आदिपुरुष थे- उपेंद्रकिशोर रायचौधुरी। वह प्रख्यात फिल्मकार और कथाकार सत्यजित राय के पितामह थे। उपेंद्रकिशोर ने ही सर्वप्रथम बच्चों को सुनाई- *रामायण* और *महाभारत* की कहानी। उनकी पुस्तक *टुनटुनीर गल्प* बहुत ही लोकप्रिय रही। उनके *गोपी गायेन बाघा बाईन* को बाद में सत्यजित राय ने सेल्यूलायड पर उतारकर विश्व के सामने रखा। वास्तव में बच्चों के लिए लिखे गए और शिशु मन को भाने वाले उत्कृष्ट साहित्य की शुरूआत तभी से हुई। इनके बाद आए दक्षिणारंजन। जहां उपेंद्रकिशोर ने बंगाल की लोक कहानियां संकलित कीं, वहीं दक्षिणारंजन ने संग्रह कीं रूपकथाएं अर्थात परी-कथाएं। उधर योगींद्रनाथ सरकार ने अपनी सहज भाषा की जादुई छड़ी से बच्चों का मन जीत लिया। उनकी *हंसी खुशी* की भाषा ने ही बच्चों को अपनी मातृभाषा सीखने के लिए प्रोत्साहित किया। वर्ण-परिचय कराते समय उन्होंने केवल 'अ' से अजगर, 'आ' से आम लिखकर अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर लिया बल्कि एक बहुत ही अच्छी कविता में वर्ण-परिचय को ढाला:

अजगर अशछे तेरे
आमटि अमी खाबो पेरे
इदुर छेना भये मोरे
ईगल पाखी पाछे धरे ...

अर्थात्-

'अजगर भागा-भागा आया
आम तोड़कर मैंने खाया
इदुर (चूहा) बेहद डरा हुआ है
ईगल (चील) पीछे पड़ा हुआ है!'

बंगाल के बच्चे आज भी *हंसी खुशी* के पाठ से ही अपनी शिक्षा आरंभ करते हैं।

इसके बाद आते हैं कुलदारंजन और सुखलता राव। सुखलता राव ने विदेशी साहित्य का बीज लाकर बंगाल की मिट्टी में बोया और यहां की आबोहवा के अनुसार उसको फलने-फूलने दिया। उन्होंने विदेशी लोककथाओं को बच्चों के लिए उपयोगी बनाकर पेश किया। उनकी *गल्पेरबोई* एवं *आरो गल्पो* नन्हे पाठकों के सामने एक नई दुनिया की खोज थी। सुखलता राव ही क्यों, उन दिनों ज्यादातर लेखक विदेशी लोककथाओं के फूलों को चुनकर अपने साहित्य का गुलदस्ता सजा रहे थे।

इसके बाद आए बाल-साहित्य के सम्राट- सुकुमार राय। सुकुमार राय की *ह-ज-र-ब-ल, अबोल तबोल, खाइ खाइ, पगला दाशु, लक्षनेर शक्तिशेल* और *झाला पाला* पुस्तकें बंगला बाल-साहित्य की बहुमूल्य संपदा है। सुकुमार राय के बाद भी कई बाल-साहित्यकार आए। रवींद्रनाथ, अवनींद्रनाथ तथा परशुराम जैसे प्रतिभाशाली साहित्यकारों ने बाल-साहित्य में अपना-अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रमेंद्र मित्र, शिवराम चक्रवर्ती, लीला मजूमदार तथा अन्य साहित्यकारों ने बंगला बाल-साहित्य को और आगे बढ़ाया। परंतु बंगला साहित्य में सुकुमार राय जैसा साहित्यकार एक ही पैदा हुआ।

सुकुमार राय उपेंद्रकिशोर रायचौधुरी के ज्येष्ठ पुत्र थे। 1887 में कलकत्ता में उनका जन्म हुआ। 1908 में रसायन शास्त्र और भौतिक विज्ञान में डबल आनर्स लेकर स्नातक होने के पश्चात वह 1911 में इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। वहां मैनचेस्टर स्कूल आफ टेक्नोलाजी में मुद्रण टेक्नोलाजी तथा फोटोग्राफी का अध्ययन करने के बाद 1913 में स्वदेश लौटे। 1915 में उपेंद्रकिशोर का निधन हो गया और सुकुमार राय को परिवार की मुद्रण एवं प्रकाशन संस्था का कार्यभार संभालना पड़ा। परिवार की लोकप्रिय बाल पत्रिका

संदेश को आगे बढ़ाने का दायित्व भी अब सुकुमार राय पर आ पड़ा।

नौ साल की कच्ची उम्र में ही सुकुमार राय ने बच्चों की पत्रिका *मुकुल* में अपनी दो कविताएं छपवाकर अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया।

हास्य-व्यंग्य को उन्होंने अपने सृजन का महत्वपूर्ण हिस्सा बना लिया था। उनका व्यंग्य तीखा होता था मगर उसमें विद्वेष नहीं था, बल्कि एक निर्मल हास्य था जिसका आनंद छोटे-बड़े सभी उठा सकते थे। उनकी कविताओं में 'अर्थ' उतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना कि 'शब्द' या 'ध्वनि'। अंग्रेजी में इसे 'नानसेंस वर्सेज़' कहते हैं। अंग्रेज कवि एडवर्ड लियर (1812-1888) इस तरह की कविताओं के लिए प्रसिद्ध थे। एडवर्ड लियर की *बुक आफ नानसेंस* से एक दृष्टांत दिया जा सकता है :

देयर वाज एन ओल्ड मैन विद ए बियर्ड
हू सेड-'इट्स जस्ट एज आई फीयर्ड
टू आउल्स एंड ए हैन
फोर लार्क्स एंड ए रेन
हैव आल बिल्ट देयर नेस्ट्स इन माई बियर्ड।'

अर्थात-

'दाढ़ी वाला था इक बूढ़ा /कहता था- मैं डरा हुआ हूं
दो उल्लू हैं, एक है मुर्गी /चार लार्क हैं, एक रेन है
इन सबने मेरी दाढ़ी में /बना रखे हैं कई घोंसले !'

भारतीय साहित्य में उस समय 'नानसेंस वर्सेज़' (अटपटी कविताएं) का ऐसा कोई दृष्टांत या नमूना नहीं था। सुकुमार राय ने ही सर्वप्रथम इसको अपनाया। उन्होंने बोलचाल की भाषा को धारदार अस्त्र की भांति साहित्य में इस्तेमाल किया। साथ में उनके आकर्षक रेखाचित्रों ने कविताओं को एक नया आयाम दिया। उनका असाधारण कौतुक-बोध उनका जीवन-दर्शन बन गया था।

सुकुमार राय की 'कि मुश्किल' (क्या मुसीबत) कविता के भाव कुछ इस प्रकार हैं :

'इस किताब में दुनिया का सब कुछ लिखा है। कैसे चटनी बनाते हैं? पुलाव कैसे बनता है? हर प्रकार मुष्टि योग का भी विधान इसमें है। इसमें साबुन, स्याही, दंतमंजन आदि बनाने की भी विधि, यहां तक कि पूजा, पर्व, तिथि, नक्षत्र का भी लेखा-जोखा है...पर यह कहीं नहीं लिखा है कि पागल सांड पीछे पड़ जाए तो अपना बचाव कैसे करना चाहिए?'





रेखांकन : सुकुमार राय

बंगला में उनकी एक मूल कविता यहां प्रस्तुत है :

बाबूराम शापुरे

बाबूराम शापुरे /कोथा जास बापुरे
अय बाबा देखे जा / दूटो शाप रेखे जा
जै शापेर चोख नेई / सिंग नेई नोख नेई
छोटे ना कि अटे ना /काऊ के जे कटे ना
कोरे नाको फोंस फांस /मारे नाको ढूंस-ढांस
नेई कोनो उत्पात /खाय सुधु दूध-भात
सेई शाप जेन तो /गोटा दुई आन तो
तेरे मेरे डंडा /कोरे दी ठंडा !

हिंदी रूपांतर इस प्रकार है :

'बाबूराम सपेरे /जा कहां रहा रे
आ बाप सुन जा / दो सांप रख जा
सांप, जिसके आंख नहीं / सींग नहीं, पंजा नहीं
हिले नहीं-डुले नहीं / किसी को जो काटे नहीं
कभी जो हंसे ना / किसी को डसे ना
नहीं कोई उत्पात / खाए खाली दूध-भात
जिंदा वही सांप / दे जा मेरे बाप
मारूं एक डंडा / कर दूं ठंडा !'

सुकुमार राय की कविताओं का अनुवाद करना मुश्किल ही नहीं, असंभव है। नीचे की पंक्तियों में उनकी एक और कविता के भाव हिंदी-भाषी पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया गया है :

कविता का शीर्षक 'खुरोर कॉल' (चाचा का बनाया यंत्र)

'...चाचा ने ऐसा एक यंत्र बनाया जिसकी मदद से पांच घंटे का रास्ता डेढ़ घंटे में तय किया जा सकता है। लेकिन इस यंत्र को समझने के लिए पांच घंटे चलना आवश्यक है। कैसा है यह यंत्र ? इसे गले में बांधकर उसमें अपना मनपसंद खाना मुंह के सामने लटकाकर रखना पड़ता है। खाने के लालच में मुंह आगे बढ़ेगा तो पांव भी चल पड़ेगा:

मन बोले ताय खाबो खाबो
मुख चोले ताई खेते
मुखेर संगे खाबर छूटे
पल्ला दिए मेते
एमनी कोरे लोभेर टाने
खाबर पाने चेये
उत्साहे ते हुंश रोबे ना
चोलबे केबोल धेये
हेशे खेले दूदश जोजन
चालबे बिना क्लेशे
खाबर गंधे पागल होये
जीभेर जले भेसे!



रेखांकन : सुकुमार राय

एक और कविता 'बोंबागड़ेर राजा' (बोंबागढ़ का राजा) में एक विचित्र देश तथा राजा के साथ पाठकों का परिचय कराते समय कवि स्वयं हैरान है कि वहां सब लोग ऐसा अद्‌भुत आचरण क्यों करते हैं? कविता में वह पूछते हैं- 'कोई मुझे यह बता सकता है कि बोंबागढ़ के राजा तस्वीर के स्थान पर आमपापड़ को फ्रेम में सजाकर क्यों रखते हैं? रानी सिर पर तकिया बांधकर क्यों घूमती रहती है? रानी का भाई पावरोटी में कील क्यों ठोकता रहता है? उस देश में जुकाम होने पर लोग सिर नीचे और पैर ऊपर करके क्यों चलते हैं? पंडित लोग अपने गंजे सिर पर डाकटिकट क्यों लगाते हैं? रात को घड़ियों को घी में डुबोकर क्यों रखा जाता है? रेशमाल से राजा की शैया क्यों तैयार की जाती है? राजा सिंहासन में टूटी हुई शीशी-बोतल क्यों लटकाकर रखते हैं? राजा की बुआ सीताफल से क्रिकेट क्यों खेलती है?'

ऐसे विचित्र देश की कल्पना सुकुमार राय ही कर सकते हैं।

दोस्तों को साथ लेकर सुकुमार राय ने 'नानसेंस क्लब' शुरू किया जिसमें वह साहित्य के बारे में चर्चा करते थे और अपने लिखे हुए नाटकों का मंचन करते थे। दुख की बात यह है कि केवल 37 साल की उम्र में ही 1923 में सुकुमार का निधन हो गया। उनकी मृत्यु के ठीक नौ दिन बाद उनकी कविताओं का संकलन *आबोल ताबोल* पहली बार प्रकाशित हुआ। ऊपर दी हुई कविताएं उनके इसी संकलन में से ली गई हैं।

सुकुमार राय गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के प्रशंसक थे परंतु उन्होंने अपनी रचना-शैली को नहीं बदला।

रवींद्रनाथ ठाकुर भी नन्हे पाठकों के लिए साहित्य का विशाल भंडार छोड़ गए। परंतु उनकी रचनाएं सुकुमार राय से एकदम भिन्न थीं। उनकी *शिशु, शिशु भोलानाथ, मुकुट, व्यंग कौतुक, हास्य कौतुक, अचलायतन, शरदोत्सव, डाकघर, गल्प-शल्प, खप छड़ा* एवं *सहज पाठ* पुस्तकें बंगला साहित्य की बहुमूल्य संपदा हैं। उनकी *गल्प गुच्छ* की कहानियां आम पाठकों के लिए लिखी गई थीं पर कई कहानियों में कविगुरु का शिशुमन प्रकट होता है। उनका *शिशु* काव्य संकलन विशेषकर बच्चों के लिए लिखा गया है। *शिशु* में कविगुरु की बहुमुखी प्रतिभा हमें देखने को मिलती है। योगींद्रनाथ के *हंसी खुशी* के साथ-साथ रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी अपने *सहज पाठ* से शिक्षा शुरू करने की एक और परंपरा आरंभ की। *सहज पाठ* का क, ख, ग सीखते-सीखते नवीन पाठक साहित्य के रस का भी आस्वादन करने लगते हैं।

उधर रवींद्रनाथ ठाकुर के निकट सान्निध्य में रहने के बावजूद उनके अनुज अवनींद्रनाथ की रचनाएं रवींद्रनाथ से भिन्न थीं। अवनींद्रनाथ एक चित्रकार की भांति अपनी रचनाएं प्रस्तुत करते थे। बच्चों के लिए लिखे जाने के बावजूद वे इतनी सरस हैं कि सभी उनका आनंद उठा सकते हैं। उनकी कहानियां पढ़ते-पढ़ते बच्चों की उम्र बढ़ने लगती है और बड़े मानो शिशु में बदल जाते हैं। उनकी *नालक, राजकहानी, बुढ़ा आंगला, आलोर फुल्की, क्षिरेर पुतुल, शकुंतला* पुस्तकें बंगला बाल-साहित्य का उज्ज्वल रत्नभंडार हैं।

उसके बाद आधुनिक काल में बच्चों के लिए साहित्य में, जैसा कि शुरू में बताया गया था, 'भारी बरसात' की कमी नहीं हुई। प्रेमेंद्र मित्र के 'घनादा', सत्यजित राय के 'फेलुदा' और 'प्रो. शंकु' जैसे चरित्रों ने नन्हे पाठकों का मन मुग्ध कर दिया।

जिन पत्रिकाओं के जरिए बाल-साहित्य की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही, उनमें हैं- *बालक, भारती, संदेश, मौचाक, सखा, साथी, मुकुल, शिशु साथी, रामधनु, रंगमशाल, शुक तारा, रोशनाई* आदि।

आजकल बंगला में बाल-साहित्य की कमी नहीं है पर क्या सुकुमार राय का स्थान कोई ले पाएगा? बंगला बाल-साहित्य के लिए वह अमूल्य विरासत छोड़ गए हैं और उन्हीं की कृतियों के बल पर बंगला बाल-साहित्य विश्व-साहित्य में अपना उल्लेखनीय स्थान बना चुका है। बीसवीं सदी का समस्त भारतीय बाल-साहित्य उनका ऋणी रहेगा। □

आजकल की विज्ञापन दरें

	अनियत	चार या अधिक निवेशन के लिए
पूरा पेज	1300.00	1000.00
आधा पेज	800.00	600.00

विशेष कवर पोजीशन

अंतिम आवरण	2500.00	2300.00
दूसरा आवरण	1900.00	1600.00
तीसरा आवरण	1500.00	1300.00

रंगीन अधिभार : प्रत्येक रंग के लिए 33.3 प्रतिशत
अतिरिक्त (केवल चार रंगों तक सीमित)

विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें :

विज्ञापन व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7
रामकृष्णपुरम, सेक्टर-1
नई दिल्ली-110065
फोन : 6105590

साक्षात्कार

•

बाल कविताओं में नटखटपन जरूरी है!

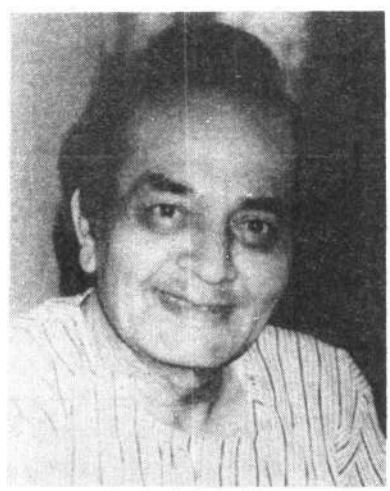
शेरजंग गर्ग से प्रकाश मनु *की अंतरंग बातचीत*

शेरजंग गर्ग हिंदी बाल कविता के शलाका पुरुषों में से एक हैं। उन्होंने न सिर्फ बहुत प्यारे, नटखट शिशु गीत और खिलंदड़ी बाल कविताएं लिखी हैं जिन्हें बच्चे मौज में आकर खुद-ब-खुद गाते-गुनगुनाते नजर आते हैं, बल्कि उनकी बाल कविताओं से हिंदी बाल कविता का एक नया मानदंड भी बना। उनकी बाल कविताओं की एक खासियत यह है कि उन्हें न सिर्फ बच्चे, बल्कि बड़े भी उत्साह से पढ़ते-गुनते नजर आते हैं। और सभी को उनमें कुछ न कुछ नया मिल जाता है। शेरजंग गर्ग की बाल कविता की पुस्तकों में *सुमन बालगीत* और *गुलाबों की बस्ती* की खासी चर्चा रही है और आज भी वह उसी उत्साह और खिलंदड़ेपन से अपने काम में जुटे हैं। इसीलिए शेरजंग गर्ग की बाल कविताओं की चर्चा छिड़ने से पहले हमने उनके बचपन में झांक लेना जरूरी समझा। प्रस्तुत हैं उनसे हुई अंतरंग बातचीत के कुछ अंश :

प्रश्न : **शेरजंग जी, जरा अपने बचपन के बारे में बताएं आप कैसे बच्चे थे— थोड़े नटखट और शरारती किस्म के...या फिर गंभीर और अंतर्मुखी?**

उत्तर : शरारती आप कह सकते हैं। गंभीर और अंतर्मुखी तो हरगिज नहीं। खेलकूद में मजा आता था। और सबसे कम रुचि मेरी स्कूली किताबों में थी। हां, इम्तहान के दिनों में थोड़ा-बहुत पढ़-पढ़ाकर पास हो जाता था, बस इतना ही!... बाल पत्रिकाएं और कुछ बड़ों की पत्रिकाएं मिल जाती थीं और मैं उन्हें बड़े उत्साह से पढ़ा करता था। उस समय बाल पत्रिका *मनमोहन* निकला करती थी, जो मुझे अच्छी लगती थी। पढ़ने में रुचि बहुत थी या कहिए कि साहित्य की निकटता अच्छी लगती थी। हो सकता है, मेरे लेखक होने का बीज भी इसमें रहा हो, पर मैं इससे परिचित नहीं था...यों हाईस्कूल तक आते-आते मैं थोड़ी-सी जोड़-तोड़ करने लगा था। जोड़-तोड़ यही कि कुछ पंक्तियों के साथ मिलती-जुलती कुछ पंक्तियां जोड़ लीं।...एक तरह से मेरा लय और छंद का शुरूआती अभ्यास उन्हीं दिनों हुआ।

बच्चों की कविताएं आपने कब से लिखनी शुरू कीं? इसके पीछे क्या कोई संयोग था या फिर आप सहज ही इस ओर चले आए?



शेरजंग गर्ग

ब्रह्मदेव जी से, जो बड़े प्रसिद्ध छायाकार हैं, मेरा निरंतर संपर्क बना हुआ था। तो एक दिन उनके यहां पत्र आया, जिसमें लिफाफे के भीतर उनके द्वारा खींचे गए कुछ बच्चों के फोटो थे। साथ ही *पराग* के संपादक आनंदप्रकाश जैन का ब्रह्मदेव जी के नाम लिखा एक पत्र था। आनंदप्रकाश जैन ने उन्हें लिखा कि *पराग* में जो आपके चित्र छपते हैं, उनके साथ उन्हीं के भावों के अनुरूप लिखी गई शेरजंग गर्ग की कविताएं भी छपें, तो बहुत अच्छा हो। यह पत्र पढ़कर, जाहिर है, मुझे अच्छा लगा। ब्रह्मदेव जी ने जो चित्र भेजे थे, उन पर कविताएं लिखकर मैंने वे चित्र और कविताएं आनंदप्रकाश जैन के पास भिजवा दीं। तो उन चित्रों के साथ मेरी कविताएं भी छपीं और फिर यह सिलसिला चल निकला।

फिर बच्चों के लिए कविताएं लिखने का यह सिलसिला आगे कैसे बढ़ा?

इसका श्रेय मैं मनोहर श्याम जोशी को देना चाहूंगा। एक दिन मैं *साप्ताहिक हिंदुस्तान* के कार्यालय में पहुंचा। तब मनोहर श्याम जोशी उसके संपादक थे। उसमें पूरे पन्ने पर 'मुसीबत है' कालम छपता था, जो *साप्ताहिक हिंदुस्तान* का बड़ा प्रसिद्ध कालम था। उस दिन चित्रकार रवींद्र जी छुट्टी पर थे। जोशी जी ने बच्चों के कुछ चित्र लाकर मेरे सामने रख दिए। कहा कि इन पर कविता लिखो। आज ही यह पेज छपने जाना है। कंपोज होने का भी टाइम नहीं है, इसलिए हाथ से ही साफ-साफ लिखकर दे दो।...तो मैंने वहीं बैठे-बैठे कविता लिखी और सुंदर हस्तलिपि में लिखकर जोशी जी को दे दी...। अगले अंक में 'मुसीबत है' की जगह पूरे पन्ने पर बच्चों के चित्रों के साथ मेरी वह कविता छपी। मुझे कितना रोमांच हुआ होगा, आप इसकी कल्पना कर सकते हैं।

उस दौर में किन अच्छे कवियों को आप पढ़ रहे थे? जिनकी बाल कविताओं की आपके मन में छाप बनी रही, उनके नाम बताना चाहेंगे?

उस दौर में सोहनलाल द्विवेदी, द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, बालकराम नागर, सर्वेश्वर जी- इन्हीं कवियों की कविताओं का खासकर प्रभाव पड़ता था।

इसलिए कि इनकी बाल कविताओं में कविता भी थी, भाषा भी थी और बाल-मनोविज्ञान की पकड़ भी?

आपकी शिशुगीतों की पुस्तक *सुमन बालगीत* को काफी लोकप्रियता मिली है। ये ऐसे गीत हैं जो हजारों बच्चों के होठों पर अनायास थिरकते रहते हैं। इस तरह के शिशुगीत लिखने की प्रेरणा आपको कहां मिली?

असल में यह किताब प्रकाशक के विशेष आग्रह पर लिखी गई थी। उसका कहना था कि मैं चार-चार, छः-छः पंक्तियों के कुछ नए ढंग के शिशुगीत लिखूं, जिनमें नयापन और ताजगी हो। तो यह चुनौती स्वीकार करके मैंने ये गीत लिखे। असल में उस समय शिशुगीतों का कोई बना-बनाया पैमाना तो था नहीं। बस, लगता था, जो गीत छोटा हो, नटखटपन से भरा हो, बच्चों को अच्छा लगे तथा उसमें एक तरह की संपूर्णता भी हो, तो वह अच्छा शिशुगीत है।

जो बड़े और चर्चित लेखक थे, उनका रवैया आपके बाल लेखन के प्रति कैसा था? सम्मान का था, या एक तरह की उपेक्षा?

नहीं, उपेक्षा का भाव तो उनमें से किसी का नहीं था। और जो कुछ मैंने बच्चों के लिए लिखा, उसकी तरफ उनका ध्यान भी गया। इसीलिए सर्वेश्वर जी जब *पराग* के संपादक बने, तो उन्होंने बहुत आग्रह करके मुझसे *पराग* के लिए बाल कविताएं मांगीं। इसी तरह शरद जोशी जब *हिंदी एक्सप्रेस* के संपादक बने, तो उन्होंने मेरी कविताएं मांगकर छापीं। मनोहर श्याम जोशी ने *साप्ताहिक हिंदुस्तान* में बड़ी प्रमुखता के साथ छापा।...इससे इतना तो साफ है कि किसी का रवैया उपेक्षा का या मजाक का नहीं था। हां, यह भी नहीं हुआ कि बड़े लेखकों में से किसी ने उनकी लिखित में प्रशंसा की। यों मिलते थे तो मौखिक रूप से सब मेरी बाल कविताओं की प्रशंसा करते थे। बाल-साहित्य के जो मर्मज्ञ थे- हरिकृष्ण देवसरे, बालकराम नागर, मस्तराम कपूर। इन सबने मेरी खूब पीठ ठोंकी तथा मेरी रचनाओं का जगह-जगह जिक्र किया।

क्या बच्चों के बीच अपनी ये बाल कविताएं सुनाने के भी अनुभव हैं?

हां, कुछ स्कूलों में बच्चों के सामने कुछ बाल कविताएं सुनाने का भी मौका आया। फिर दूरदर्शन और रेडियो पर सुनाने के मौके तो मिलते ही रहते हैं। मुझे यह देखकर अच्छा लगता है कि मेरी बहुत-सी बाल कविताएं बच्चों को पहले से ही याद हैं। किसी भी रचनाकार के लिए, मेरा ख्याल है, इससे बड़े सुख की कल्पना करना मुश्किल है। *सुमन बालगीत* की 'मेरी गाय' कविता को तो इतना पसंद किया गया कि आज भी लोग उसकी चर्चा करते हैं।

आपकी नजर में अच्छी बाल कविता क्या है?

मुझे लगता था कि मैं ऐसी कविता लिखूं जो महज शब्दों की कसरत या जोड़-तोड़ न हो, उसमें कोई न कोई बात जरूर पैदा होनी चाहिए। उसमें बाल मन की समझ हो, कविता भी हो, सरलता भी हो, लयात्मकता भी हो। अटपटेपन के साथ थोड़ा चटपटापन भी हो, कविता में नटखटपन भी बच्चों के लिए जरूरी है।...यानी किसी न किसी रूप में इसमें शब्दों का एक खेल भी है। तो मेरी कोशिश तो ऐसी कविता लिखने की ही होती थी। कभी-कभी मैं कामयाब हो जाता था, तो कभी नाकामयाब भी होता था।

अच्छा, यह जो नटखटपन है, इसे आप अपने अलावा और किन-किन बाल कवियों में देखते हैं?... इसी से जुड़ा हुआ शायद यह सवाल भी है कि आपके पसंदीदा बाल कवि कौन-कौन से हैं?

आपके दोनों सवालों का जवाब एक ही है। इसलिए कि जिन-जिन कवियों के यहां शब्दों का खेल, यानी खिलंदड़ापन और नटखटपन है, असल में बच्चों के अच्छे कवि भी वही हैं। और जाहिर है, मेरे पसंदीदा कवि भी वहीं हैं। सर्वेश्वर जी, योगेंद्र कुमार लल्ला, मोहनलाल द्विवेदी, निरंकार देव सेवक, बालस्वरूप राही, बालकराम नागर, शंभूनाथ श्रीवास्तव, दामोदर अग्रवाल- ऐसे कई लोग हैं। अभी-अभी *दैनिक हिंदुस्तान* में देवेंद्र कुमार की कविता पढ़ी है- 'हंसी का स्कूल'। यह मुझे बहुत अच्छी कविता लगी। ऐसे ही और अनेक नाम हैं।

आज एक ओर इलैक्ट्रानिक मीडिया, खासकर टी.वी. बच्चों की रुचियों को बिगाड़ रहा है, तो दूसरी ओर बच्चों के सिर पर कैरियरिज्म का बोझ है...उनके बस्ते लगातार भारी होते जा रहे हैं। ऐसे में क्या उन्हें बाल-साहित्य पढ़ने का अवकाश मिलेगा? आज के समय में आपके ख्याल से बाल-साहित्य के सामने चुनौतियां क्या हैं और बाल लेखकों की जिम्मेदारी क्या है?

आज के समय में बच्चों को दिशा देने में बाल लेखकों की बहुत ज्यादा जिम्मेदारी है। हालांकि ज्यादातर बाल लेखकों ने इस जिम्मेदारी को समझा नहीं है। बाल-साहित्य में जितना अच्छा लिखा जा रहा है, उससे दस गुना ज्यादा कूड़ा लिखा जा रहा है और उससे बीस गुना ज्यादा छापा जा रहा है। छापा इसलिए जा रहा है कि बिकता है या बेच दिया जाता है... जाहिर है, अगर श्रेष्ठ बाल रचनाओं को इलैक्ट्रानिक मीडिया के जरिए पेश किया गया होता या कम से कम अच्छे बाल-साहित्य को रेखांकित किया गया होता, तो उसकी तरफ जरूर लोगों का ध्यान जाता। हरिकृष्ण देवसरे, बालकराम नागर जैसे लोग लगातार यह प्रयत्न करते रहे हैं, पर अभी यह बहुत कम है। मूल बात तो यह है कि हमने अच्छे साहित्य को पहचानने की कोशिश ही नहीं की। बाल-साहित्य में आलोचना लगभग अनुपस्थित है। इसी तरह प्रकाशकों ने भी बाल-साहित्य का व्यापार तो किया, लेकिन लेखक को वह सम्मान नहीं दिया, जो अपेक्षित था।

इक्कीसवीं सदी में बाल-साहित्य की क्या स्थिति होगी? क्या उसकी जरूरत और बढ़ेगी या उसका अंत होगा?

जहां तक मैं सोचता हूं, साहित्य किसी सदी का नहीं होता, बल्कि सदियों का साहित्य होता है। कोई रचना अगर उन्नीसवीं सदी में महान थी, तो वह इक्कीसवीं सदी में महान रहेगी।...हां, यह मैं जरूर मानता हूं कि इक्कीसवीं सदी एक चुनौती जरूर हमारे सामने ला रही है। अब वक्त आ रहा है कि जिन्होंने अब तक कुछ ढंग का नहीं लिखा, वे कम से कम इक्कीसवीं सदी का सम्मान करते हुए ही कुछ महत्वपूर्ण रचें, ताकि आगे आने वाली पीढ़ियों को बाल-साहित्य की एक महत्वपूर्ण विरासत सौंपी जा सके। □

भटकाव और नई दिशा

अपने मूल रूप में लोक साहित्य और लोककथाओं की रचना बच्चों के लिए न होकर संपूर्ण समाज के लिए एक मूल्यपरक आदर्श जीवन का ढांचा बनाने के उद्देश्य से हुई थी। लेकिन उन्हें कब और क्यों बाल-साहित्य कहकर पेश किया जाने लगा, यह ठीक-ठीक कहना कठिन है। लेकिन इतना तय है कि हम बड़े लोग बच्चों को एक आदर्श मनुष्य के रूप में देखना चाहते हैं इसीलिए इन मूल्यवादी रचनाओं को उनके सामने बार-बार रखते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि जातक, पुराण तथा अन्य सभी प्राचीन कथा प्रसंग एक बार नहीं, बार-बार बाल-साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में प्रचारित-प्रकाशित किए जाते रहे हैं। बाल कथा साहित्य पर **देवेंद्र कुमार**

ऐसा हर बार होता है- जब-जब बाल-साहित्य की चर्चा चलती है तो आंखों के सामने बच्चों के चेहरे उभर आते हैं और फिर अपना बचपन याद आता है। कोई मेरा हाथ थामकर बचपन की दुनिया में ले जाता है। कानों में वे कहानियां गूंजने लगती हैं जिन्हें मैंने हवेली के दूसरे बच्चों के साथ गर्मियों में तारों भरे आकाश के नीचे ठंडी छत पर नींद के झूले में झूलते हुए या सर्दियों में रजाई की अलस गरमाहट में दुबके रहकर बूढ़े बाबा से सुना था।

कैसी रहस्यपूर्ण और रोमांचक होती थीं वे कथाएं- परियां आकाश से उतरकर अपनी जादुई छड़ी के स्पर्श से दुनिया की हर अलभ्य वस्तु हमें दे देतीं, वीर राजकुमार राक्षस के काले किले में कैद राजकुमारी को मुक्त कराने के लिए कठिन यात्रा पर निकलता और फिर ऐसी-ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएं घटतीं कि हम दांतों तले उंगली दबाकर अपलक ताकते रह जाते। उस रहस्यमय कथालोक में घटने वाली हर घटना का हमारी वास्तविक दुनिया के सीमित संसार से कोई मेल नहीं था इसीलिए वह हमें लुभाती थी। धीरे-धीरे हम बड़े होते गए और लोककथाओं का रहस्यमय, लुभावना संसार न जाने कहां छूट गया! अपनी दुनिया के कठोर और कड़वे यथार्थ से लड़ते और चोट खाते हुए बार-बार मन में आता है- 'काश, सदा ही उस कथालोक में रह पाते।' लेकिन ऐसा कहां हो पाता है! शायद दुनिया का हर वयस्क अपने बचपन के अबोध और काल्पनिक संसार को इसी कसक के साथ याद करता है।

हैरान हूं कि बचपन से इतनी दूर आने के बाद भी ये कथाएं मेरे स्मृति पटल पर इतने चटख रंगों में बची कैसे रह गईं! केवल मेरे साथ ही ऐसा नहीं हुआ, सभी के साथ होता है- जो हमसे जितना दूर होता जाता है, उसके प्रति उतनी ही अधिक ललक जगती है।

दुनिया के हर देश में बच्चे ऐसी ही इंद्रधनुषी लोककथाएं सुनते-पढ़ते बड़े होते जाते हैं। समय बदलता है, पीढ़ियां बदलती हैं पर वे कथाएं अपने उसी अंदाज में बढ़ती चली आ रही हैं। हम बड़े होकर भी उन्हें सुनते हैं। तब सच के खुरदरेपन से टकराकर अविश्वसनीय के प्रति हमारी बाल सुलभ आस्था का रंग उतरता है और यही कारण है कि इन लोककथाओं के प्रति बड़ों का आकर्षण कम होता जाता है।

यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि इन लोककथाओं की रचना कब शुरू हुई थी। शायद लोककथाओं और मनुष्य की उम्र बराबर ही हो। लेकिन अब इतना जरूर है कि लोककथाओं की इच्छा अगर बंद नहीं हुई तो पूर्वापेक्षा काफी कम अवश्य हो गई है। क्योंकि समय बीतने के साथ समाज के परिवेश और उसकी रुचियों में बदलाव आ रहा है, जो एक स्वाभाविक क्रिया है। और एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि बच्चों के बीच सुनी और पढ़ी जाने के बावजूद लोककथाएं या लोक साहित्य अपने सर्वांग में बाल-साहित्य नहीं हैं।

अपने मूल रूप में लोक साहित्य और लोककथाओं की रचना बच्चों के लिए न होकर संपूर्ण समाज के लिए एक मूल्यपरक आदर्श जीवन का ढांचा बनाने के उद्देश्य से हुई थी। लेकिन उन्हें कब और क्यों बाल-साहित्य कहकर पेश किया जाने लगा, यह ठीक-ठीक कहना कठिन है। लेकिन इतना तय है कि हम बड़े लोग बच्चों को एक आदर्श मनुष्य के रूप में देखना चाहते हैं इसीलिए इन मूल्यवादी रचनाओं को उनके सामने बार-बार रखते हैं। और इसका परिणाम यह हुआ है कि जातक, पुराण तथा अन्य सभी प्राचीन कथा प्रसंग एक बार नहीं, बार-बार बाल-साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में प्रचारित-प्रकाशित किए जाते रहे हैं।

इस बात का एक और बड़ा प्रमाण बाल पत्रिका *नंदन* में अपने सत्ताईस वर्षों के कार्यकाल में मिला। इस अवधि में मैंने वहां प्रकाशनार्थ आने वाली लगभग पचास-साठ हजार रचनाएं तो पढ़ी ही होंगी। उनमें लगभग पिच्चानवे प्रतिशत रचनाएं इसी कोटि में थीं। वे प्राय: इस या उस प्रदेश की लोककथा का ही रूप-परिवर्तन होती थीं। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि कमोबेश यही स्थिति अन्य पत्र-पत्रिकाओं की भी होगी। यह प्रतिशत पत्र-पत्रिका के फारमेट या स्वरूप पर निर्भर करता है।

कई-कई बार तो ऐसा भी देखने में आया कि एक ही लोककथा कई लेखकों द्वारा थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ प्रकाशनार्थ मिली। लगातार इस गैर रचनात्मक बाल लेखन से साक्षात्कार होते चले जाने के कारण यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही था कि आखिर लेखक जानी-मानी लोककथाओं का पुनर्लेखन या पुनर्कथन क्यों कर रहे हैं? आखिर इसके पीछे कौन-सा विचार काम कर रहा है?



रेखांकन : पंकज झा

यह बात हिंदी बाल-साहित्य में चल रही दो समानांतर रचना धाराओं को प्रकट करती है– लोककथाओं के पुरातन और अथाह महासागर से रचनाओं के मोती चुनने वाले लेखक उसी आदर्श और मूल्यवादी दृष्टिकोण से प्रेरित रहे हैं जिसमें बच्चों को अच्छे और सदाचारी मनुष्य के रूप में विकसित करने की प्राचीन सुधारवादी दृष्टि रहती है। इसमें यह सोचने पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता कि बच्चा वस्तुत: क्या चाहता है, उसका मनोविज्ञान क्या मांग करता है।

इसके साथ ही यह एक सुविधाजनक स्थिति भी है। यहां लिखने वाले के लिए रचना की आधार सामग्री सदा सामने मौजूद रहती है। उसे बस अपने शब्दों में कथा को प्रस्तुत कर देना होता है। स्पष्ट है कि लोककथा आधारित रचनाओं में लेखक का मौलिक योगदान कम ही होता है।

हम सभी इस बात से परिचित हैं कि शिक्षाप्रद उपदेशात्मक कथाओं की यह अविराम धारा बहाने के बावजूद बच्चे जो कुछ बनते हैं उसके पीछे सामाजिक व पारिवारिक परिवेश तथा परिस्थितियों की भूमिका कहीं अधिक महत्वपूर्ण होती है। और उपदेश या वर्जना के प्रति बाल मन के शाश्वत भाव को यह कथा सबसे अच्छी तरह परिभाषित करती है जिसमें राजा अपने बेटे से कहता है कि वह दक्षिण दिशा में कभी न जाए। और फिर हम देखते हैं कि राजा का बेटा दक्षिण दिशा में ही जाता है। कहने का अर्थ यही है कि बच्चे अपने कच्चेपन और अनुभवहीनता के बावजूद अपने ढंग से जीवन जीना चाहते हैं जबकि लोककथाओं की उपदेशात्मक मनोरंजन की संरचना में इसकी गुंजाइश कम होती है।

बाल-साहित्य की दूसरी धारा उन रचनाओं की है जिनमें बच्चे रचना के केंद्र में होते हैं या उसके परिवेश में उनकी उपस्थिति निरंतर बनी रहती है। इस धारा की रचनाएं, जिन्हें समकालीन संदर्भों के कारण आधुनिक बाल-साहित्य कहा जाता है, बच्चों की मानसिकता के अनुरूप उनसे जुड़ी रहती हैं। अभी हिंदी बाल-साहित्य में इस तरह की रचनाएं अपेक्षाकृत कम ही हैं और यह धारा लोक साहित्य पर आधारित रचनाओं की तुलना में कम मुखर है।

कुछ समय से इन दो धाराओं को लेकर एक निरर्थक विवाद छिड़ गया है। आधुनिक बाल-साहित्य के समर्थक लोककथापरक बाल-साहित्य को पुरातन दृष्टि और पुराने बिंबों के कारण पिछड़ा हुआ और बच्चों को पुराणपंथी बनाने वाला मानते हैं तो दूसरा पक्ष आधुनिक बाल-साहित्य को पश्चिमी साहित्य की नकल पर रचा हुआ मानकर उसे हेय सिद्ध करने का प्रयास करता है। यह विवाद वस्तुत: व्यर्थ है क्योंकि बाल-साहित्य की लोककथा पर आधारित रचनाएं तथा आधुनिक बाल-साहित्य परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। लेकिन इतना अवश्य हुआ है कि बाल-साहित्य की दो रचना धाराओं से एक विचित्र स्थिति बन गई है।

इस समय बड़ों के लिए लिखने वाले रचनाकार और बाल साहित्यकार अलग-अलग चौखटों में बंटे हुए नजर आते हैं, हमारी कुछ प्रांतीय तथा विदेशी भाषाओं के विपरीत, हिंदी में बड़ों के रचनाकार प्राय: ही बच्चों के लिए नहीं लिखते। पूछने पर वे कह देते हैं कि बच्चों के स्तर पर उतरकर उनके लिए लिखना कठिन है। पर मेरा विश्वास है कि बात ऐसी है नहीं। अगर वे लिखें तो प्रेमचंद की 'ईदगाह', रवींद्रनाथ ठाकुर की 'काबुलीवाला' और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की 'महेश' जैसी अनुपम रचनाएं बाल-साहित्य की श्रीवृद्धि कर सकती हैं।

एक बार बंगला बाल पत्रिका *आनंद मेला* के संपादक नीरेंद्रनाथ चक्रवर्ती से मिलना हुआ। उन्होंने कहा कि अभी वह स्वयं को संपूर्ण लेखक नहीं मानते क्योंकि अभी वह बच्चों के लिए नहीं लिखते। यह बात अपने में आंखें खोल देने वाली है। बच्चों के लिए लिखने में एक गहन संवेदनापूर्ण दृष्टि, सरल भाषा-शैली और मौलिक रचना शक्ति चाहिए। इस दृष्टि से हिंदी बाल-साहित्य को निर्धन ही कहना होगा।

यह एक अजीब दुश्चक्र बन गया है। बड़ों के लेखक बच्चों के लिए नहीं लिखते, इस कारण बाल-साहित्य में स्तरीय रचनाओं का अभाव हो गया है। दूसरी ओर पत्र-पत्रिकाओं को बच्चों के पन्ने पर वही छापना पड़ता है जो सुलभ हो। यही कारण है कि स्तरहीन लोककथा भूमि वाली रचनाएं अधिक दिखाई पड़ती हैं। उन्हें देखकर लगता है जैसे बाल-साहित्य के एक बड़े अंश में समय ठहर गया हो।

एक विरोधाभास की जो स्थिति हिंदी बाल-साहित्य में दिखाई दे रही है वह देश की प्रांतीय भाषाओं तथा प्रमुख विदेशी भाषाओं के बाल-साहित्य में नहीं है। प्रमुख विदेशी भाषाओं, यथा– अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, डच, रूसी आदि में लोक साहित्य की धारा को एक निश्चित परिभाषा और दिशादृष्टि मिल गई है। उन भाषाओं में बाल-साहित्य और लोक साहित्य में कोई घालमेल नहीं है।

भारत की भाषाओं की तरह यूरोपीय भाषाओं में प्रचुर लोक साहित्य मौजूद है। वहां के बच्चे अपनी सभ्यता-संस्कृति के प्राचीन स्वरूपों से जुड़ी लोककथा और लोक गाथा साहित्य का आनंद लेने के साथ-साथ अपने लिए विशेष रूप से लिखे जा रहे बाल-साहित्य को पढ़ने के लिए स्वतंत्र हैं। वहां के प्राचीन लोक साहित्य को बाल-साहित्य का भ्रामक स्वरूप देने की गलती नहीं की जाती। पूछा जा सकता है तब हिंदी में यह स्थिति कब तक रहेगी?

यहां प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि परियों और बौनों की कल्पना कथाएं यूरोपीय तथा अरबी, फारसी लोक परंपरा से भारतीय लोक साहित्य में आई हैं। भारतीय लोक परंपरा में पौराणिक अप्सराओं, राक्षसों की कल्पना है। अप्सराएं मन की गति से उड़ती हैं। वे विदेशी परियों की तरह पक्षियों जैसे दुर्बल और विरूप पंखों पर आश्रित नहीं। लेकिन फिर भी भारत में विदेशी मूल वाली परी कथाएं इस तरह घुल-मिल गई हैं कि उन्हें अलग करके दिखाना मुश्किल है।

भारतीय बाल-साहित्य में लोककथा और लोकगाथा साहित्य के इस आधिक्य के कई दुष्परिणाम हुए हैं। एक बात जो प्रमुखता से उभरकर सामने आती है वह यह कि ये कथाएं अपने को दोहराती हुई लगती हैं। यों हिंदी में बाल-साहित्य की श्रेष्ठ साज-सज्जा वाली पुस्तकें खूब छप और बिक रही हैं, पर यदि उनके कथ्य चयन के तत्व का निष्पक्ष आकलन हो तो यह तुरंत पता चल जाएगा कि अधिकतर रचनाएं सुनी-सुनाई और बहुप्रचारित, अनेकधा प्रकाशित लोककथाओं के नए-नए संस्करण ही हैं। अन्यथा क्या कारण है कि हिंदी में बच्चों के मौलिक नाटक और उपन्यास नहीं के बराबर लिखे जा रहे हैं। इस कारण के विस्तार में न जाकर इतना ही कहना काफी होगा कि नाटक और उपन्यास मौलिक रचना कर्म की मांग करते हैं जबकि लोककथाओं के पुनर्लेखन और पुनर्कथन में ऐसा कुछ भी नहीं चाहिए। बस कथा के नए संस्करण पर अपना नाम ही लिखना होता है।

इस लेख को लिखने के दौरान मैं दिल्ली के कई बड़े पुस्तक वितरकों की दुकानों पर गया, दिल्ली पुस्तक मेला देखा और पिछले छह-सात वर्षों के दौरान एकत्र की गई लगभग डेढ़ सौ कथाओं और चार सौ कविताओं को भी देखा। इस अवलोकन से कुछ दिलचस्प निष्कर्ष सामने आए।

लोककथा तत्व और राजा-रानी जैसे पात्रों पर आधारित कहानियों की संख्या पचास थी तो पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर लिखी गई कथाएं उससे आधी यानी पच्चीस थी। बच्चों को केंद्र में रखकर लिखी गई कथाएं 68 थीं। विज्ञान कथाएं यदि केवल दो थीं तो बाल नाटक केवल एक ही था और बाल उपन्यास भी एक ही नजर आया।

लोककथा परक कहानियां लिखने वालों में सुदामा प्रसाद, प्रकाश खरे, अमर गोस्वामी, अनिल कुमार, सुबुद्धि गोस्वामी, शांता ग्रोवर, रमाकांत, रामवृक्ष सिंह, अंकुश्री, शीतांशु भारद्वाज, फिगार बुलंदशहरी, रामसेवक शर्मा, संदीप सक्सेना, रमेश आजाद, सी.के. देव, हारूं रशीद, संजय उल हक, रमाशंकर आदि के नाम प्रमुख थे।

वन्य जीवों पर आधारित कथा लेखक निम्नलिखित थे- रति, कल्पनाथ सिंह, पारुल शर्मा, शिवशंकर यादव, शुकदेव प्रसाद, दिनेश चमोला, ओमप्रकाश कश्यप, रश्मिस्वरूप जौहरी, नरेंद्र सिंघवी आदि।

राजा-रानी को प्रमुखता से रेखांकित करने वाले लेखक थे- हेमचंद्र जोशी, ओमदत्त चावला, मदन गोपाल शर्मा, एन.के. जोशी, विजयानंद, आनंदप्रकाश जैन, आशा कांडपाल, सुशीला त्रिपाठी, दिनेश चमोला, महेश कुमार सिंह, अशोक पंचोली, शोभा माथुर।

बच्चों को केंद्र में रखकर लिखी गई कथाओं के रचनाकार थे-विकास भारद्वाज, जाकिर अली रजनीश, नागेश पांडेय, संजय, प्रतुल गुप्ता, पंकज मोहन शर्मा, कनु भारतीय, शकुंतला वर्मा, संदीप कपूर, कमल किशोर श्रमिक, मुहम्मद साजिद खां, सुखबीर, रविशंकर शर्मा, श्रीप्रसाद, विमला रस्तोगी, तरुणकुमार राय, सुधा गोयल, देवेश, वंदना गुप्ता, साबिर हुसेन, रूबी मोहंती, अशोक वशिष्ठ, रामवृक्ष सिंह, विमलेश दिपि, राष्ट्रबंधु, नरेंद्र सिंघवी, आशीष श्रीवास्तव, संजय श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद द्विवेदी, दीपक दीक्षित, शिवचरण चौहान आदि। इन नामों को देखने से एक बात स्पष्ट होकर उभरती है- इनमें से कोई भी नाम (सुखबीर के अतिरिक्त) ऐसा नहीं है जो लेखन के क्षेत्र में अपनी रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हो। इस बात से इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि बच्चों के लिए परिचित या प्रसिद्ध लेखक प्रायः नहीं लिख रहे हैं और यह बात बाल-साहित्य के स्वास्थ्य के लिए अच्छी नहीं है। पत्र-पत्रिकाओं को अपने बाल पृष्ठ पर कुछ न कुछ तो छापना ही है। यदि उन्हें अच्छे लेखकों की श्रेष्ठ रचनाएं मिलें तो वे निश्चय ही प्रकाशित करना चाहेंगे। ऐसा न हो पाने की स्थिति में वे जो भी उपलब्ध हो, उन्हीं में से चुनकर छापने को विवश होंगे।

इसलिए लेखकों का दायित्व बन जाता है कि वे श्रेष्ठ तथा संवेदनशील रचनाएं देकर बाल-साहित्य के रचना भंडार को समृद्ध करें और कथा तत्व की जो धाराएं सिमटी हुई और सीमित दिखाई दे रही हैं, उन्हें सार्थक दिशाओं में ले जाएं। हां, पत्र-पत्रिकाएं इतना अवश्य करें कि हिंदी के रचनाकारों से सम्मानपूर्वक श्रेष्ठ रचनाओं की मांग करें। यदि यह संभव हो जाए तो बाल-साहित्य में उपस्थित यह विरूप स्थिति रचनात्मक हस्तक्षेप का सार्थक रूप ग्रहण कर सकती है।

बाल-साहित्य का दूसरा प्रमुख आयाम कविताओं का है। इसमें बाल कथा जैसी विरोधाभासी स्थिति तो नहीं है लेकिन कथ्य या विषय चयन में दोहराव की स्थिति अवश्य चल रही है।

पत्र-पत्रिकाओं अथवा काव्य संकलनों में प्रकाशित कविताओं में तितली, फूल, बादल, मौसम, पशु-पक्षी, देश-प्रेम, चरित्र-निर्माण जैसे विषय ही बार-बार उठाए जाते हैं। यानी ये लेखक बच्चे के आसन्न परिवेश से नजरें हटाकर बार-बार आकाश की ओर देखते हैं, वन-जंगल की शोभा निरखते हैं, बच्चों के मन में देशभक्ति का, देश पर न्योछावर होने का जोश भरते हैं पर बच्चे के मन में झांकने का अवसर नहीं खोजते, दुनिया को उसकी आंखों से देखने का प्रयास नहीं करते। मैंने जिन 400 कविताओं को देखा उनमें मां, पिता, भाई-बहन, पड़ोस, बस्ता, स्कूल के साथी, खेल, घर-आंगन से जुड़ी कविताएं बहुत कम थीं। यों बाल कविताएं खूब लिखी जा रही हैं और छप भी रही हैं। पर उनमें उपदेशक भाव है या पशु-पक्षियों के मानवीकरण के प्रयास हैं। मौसम के गीत भी बहुत मिलते हैं।

नए विषयों को छूने की कोशिश में दिविक रमेश की एक कविता है-

'खुली-खुली खिड़की-सी दीदी' जिसमें खिड़की के खुलेपन की तुलना दीदी के मन से की गई है। दामोदर अग्रवाल हिंदी बाल कविता के अग्रणी हस्ताक्षर हैं। अपनी एक कविता 'जादू की गठरी' में कल्पना की उड़ान भरते हुए कहते हैं *जादू की एक गठरी लाऊं, बच्चों में बच्चा बन जाऊं।* विषय की ताजगी और शिल्प के नए प्रयोगों की दृष्टि से रमेश तैलंग का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। वह बालगीतों में नए-नए बिंब प्रस्तुत कर रहे हैं। भाषा के नए प्रयोग और तुकों के बंधन को तोड़ते हुए गेयता की रवानी बनाए रखने में उन्हें महारत हासिल है।

हिंदी के प्रमुख बाल कवियों में दामोदर अग्रवाल, दिविक रमेश, रमेश तैलंग, बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग, प्रयाग शुक्ल, सुरेश विमल, सूर्यभानु गुप्त, सूर्यकुमार पांडेय, हरीश निगम, प्रकाश मनु, सीताराम गुप्त, रमेश कौशिक, जगजीत सिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

कहानी कहने वाली नानी के खो जाने से परेशान जगजीत सिंह अपनी ताजा कविता में कहते हैं–

देखी तो नहीं तुमने
मेरी बूढ़ी हो गई नानी
सुनाया करती थी मुझको
परियों की कथा कहानी
कल तक तो थी यहां
गुम हुई न जाने कहां !

इस शताब्दी के अंतिम पड़ाव से पीछे मुड़कर हिंदी बाल-साहित्य की विकास यात्रा पर दृष्टि डालता हूं तो उत्साह और क्षोभ के मिले-जुले भाव घेर लेते हैं।

उत्साह इसलिए कि संभावनाओं के द्वार सदा ही खुले रहते हैं। बस अंदर जाकर कुछ नया कर डालने का साहस चाहिए। और क्षोभ इसलिए कि बाल-साहित्य की धारा में कहीं-कहीं ठहराव और दिशाहीनता व जड़ता के भाव भी सहज ही देखे जा सकते हैं।

हमें इस बिंदु से आगे देखना है। बाल-साहित्य की धारा को उन्मुक्त कर, उसके बहाव में गति लाने का दायित्व लेखकों का है। वे रचनाएं तैयार कर प्रकाशन की प्रतीक्षा में ही न बैठे रहें। प्रकाशन तो व्यवसाय है जिसका लेखकीय संवेदना से बहुत दूर का भी संबंध नहीं है। क्या छपेगा और क्या छपने से रह जाएगा– इसका निर्णय करने वाला व्यावसायिक और राजनीतिक गणित बहुत टेढ़ा है।

बाजार में पुस्तकों के प्रकाशक हैं, पत्र-पत्रिकाएं हैं और पढ़ने-सुनने वाले नन्हे पाठक और श्रोता हैं। लेखकों को चाहिए– मिलकर स्वयं उनके पास जाएं, अपनी रचनाएं पढ़वाएं और सुनाएं। सुनाने और सुनने की परंपरा की शृंखला बीच में ही सरस्वती की धारा की तरह लुप्त हो गई है, टूट-बिखर गई है। हम यह भी न भूलें कि सभी बच्चे नहीं पढ़ते, सारी रचनाएं नहीं छपतीं, सभी पुस्तकें हाथों में नहीं पहुंचतीं, अधिकतर बच्चे शायद पढ़ नहीं पाते। लिखने से लेकर छपने, पढ़ने और सुनने की इस लेखकीय-प्रकाशकीय प्रक्रिया में लेखकों को अपनी भागीदारी और अधिक मुखर करनी होगी। केवल लिखने भर से ही काम नहीं बनेगा। □



हमारे अन्य उत्पाद :
क्लारपायरीफोस टेक 94% व 20, 40.4, 48% ई.सी. इन्डोसल्फान टेक 94% व 35%, कार्बोफयूरान 3 जी, 5 जी, 10 जी, फेनवलेरेट टेक 94% व 20% ई.सी., 04% डस्ट, कार्बेनडेजिम 50% डब्ल्यू.पी., सल्फर 80% डब्ल्यू.पी., कापर आक्सी क्लोराइड 50% डब्ल्यू.पी. व अन्य 60 कीटनाशक फार्मूलेशन। हम टर्नकी आधार पर टेक्नीकल ग्रेड कीटनाशकों, कीटनाशकों के फार्मूलेशन और एन.पी.के. ग्रेनूलेटेड उर्वरक संयंत्र के लिए तकनीकी जानकारी भी सुलभ कराते हैं।

दक्षिण भारत का बाल–साहित्य

बच्चों में पढ़ने के प्रति उत्कंठा होती है / वे उपन्यास, कहानियां और क्षणिकाओं को बहुत रुचि के साथ पढ़ते हैं / साथ ही उन्हें ऐसी पुस्तकों की तलाश रहती है जिसे हम मनोरंजनयुक्त ज्ञानवर्द्धन की सामग्री कह सकते हैं / यह रुझान भारत के सभी भागों में देखा जा सकता है / दक्षिण में भी यह रुझान देश के शेष भागों की तरह चल रहा है / लेकिन कुछ विभिन्नताएं भी हैं / ये विभिन्नताएं बच्चों की पढ़ने की आदतों में देखी जा सकती हैं / दक्षिण भारत के बाल–साहित्य पर **आर.के. मूर्ति**

इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि बच्चों को सर्वोत्तम पाठ्य-सामग्री की जरूरत होती है। यह बात आज भी उतनी ही मान्य है जितनी पहले थी। निस्संदेह इलैक्ट्रानिक संचार माध्यमों ने बच्चों में अपनी पहुंच बना ली है और स्कूली पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के बाद जो समय बच्चों के पास शेष रहता है, उसके एक बड़े हिस्से में टेलीविजन आदि माध्यमों ने अपनी पकड़ कर ली है। हालांकि इससे एक लाभ यह हुआ है कि इन माध्यमों से बच्चों को अपनी पसंद की पुस्तकों के चयन में काफी सुविधा हो गई है अन्यथा इस कार्य में भी काफी समय नष्ट होता था। जब भी बच्चे कोई पुस्तक लेकर बैठते हैं तो उन्हें निश्चित रूप से मालूम होता है कि वे कुछ रोमांचक सामग्री पढ़ने जा रहे हैं। अत: पुस्तकों के महत्व की चर्चा करते समय यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि इलैक्ट्रानिक माध्यमों के दबाव में पुस्तकों की उपयोगिता प्रभावित नहीं होने वाली है। मैं अपने अनुभव के आधार पर यह बात कह रहा हूं। अनेक वर्षों से बच्चों से मेरा संपर्क रहा है और उन्होंने यह बात स्वीकार की है कि पुस्तकों का कोई विकल्प नहीं है। पुस्तक को आप अपनी सुविधा के अनुसार पढ़ सकते हैं। इसे एक बार में ही पढ़ा जा सकता है या फिर समय और मन:स्थिति के अनुसार अंतरालों में पढ़ सकते हैं। यही वह सुविधा है जो इलैक्ट्रानिक माध्यम पर उपलब्ध नहीं हो सकती।

बच्चों के साथ संपर्क के दौरान एक और रोचक अनुभव यह हुआ कि मुझे पता लगा कि उनमें पढ़ने के प्रति उत्कंठा होती है। वे उपन्यास, कहानियां और क्षणिकाओं को बहुत रुचि के साथ पढ़ते हैं। साथ ही उन्हें ऐसी पुस्तकों की तलाश रहती है जिसे हम मनोरंजनयुक्त ज्ञानवर्द्धन की सामग्री कह सकते हैं। यह रुझान भारत के सभी भागों में देखा जा सकता है। दक्षिण में भी यह रुझान देश के शेष भागों की तरह चल रहा है। लेकिन कुछ विभिन्नताएं भी हैं। ये विभिन्नताएं दक्षिण और उत्तर भारत में बच्चों की पढ़ने की आदतों में देखी जा सकती हैं।

ग्रामीण और शहरी बच्चों में भी इस प्रकार की भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं। गौर करने पर पता चलेगा कि ये भिन्नताएं मात्र सतही तौर पर हैं। यदि देश में बाल-साहित्य के पूरे परिदृश्य पर नजर डालें तो साफ हो जाएगा कि विभिन्नताओं में अनेक समानताएं दृढ़ रूप से अंतर्निहित हैं।

पहले सामान्य रुझानों की चर्चा करें।

दक्षिण में भी बच्चे धार्मिक ग्रंथों और पुराणों से ली गई कथाओं में रुचि लेते हैं। देश के विभिन्न भागों में कार्यरत बाल-साहित्यकारों ने इन कथाओं को बार-बार दोहराया है। *रामायण* इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। अनेकों बार अलग-अलग तरह से इसकी कहानी कही गई है। इसके बावजूद आज भी यह महाकाव्य आधुनिक रचनाकारों का प्रेरणा स्रोत है। तमिल में संथानलक्ष्मी की *रामायणम चिरवरुक्कू* इसी कथावस्तु से जुड़ी पुस्तकों में एक है। लेखिका ने अपनी पुस्तक में पूरी रामायण को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया है। पादलो रामाराव की *बालला बोम्मला रामायणम* आंध्र प्रदेश में बच्चों के लिए रोमांचक पाठ्य सामग्री सिद्ध हुई है। कहानियों के लिए जातक कथाएं एक और समृद्ध स्रोत हैं। के.एस. रविकुमार की *जातक कथागल* (मलयालम) इसी श्रेणी में आती है।

पंचतंत्र एक और महत्वपूर्ण स्रोत है जो लेखकों को प्रभावित करता रहा है। सुमंगला बिजुदेव और ओमनाकुत्तन द्वारा मलयालम में लिखित *पंचतंत्र* हाल ही में प्रकाशित हुई है और इसे बच्चों ने बहुत पसंद किया है।

साहस और रहस्य कथाओं ने भी सभी भारतीय भाषाओं के बाल-साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

साथ ही ये भी प्रयास किए जा रहे हैं कि बच्चों के लिए स्थानीय जनजीवन की समृद्ध परंपराओं और परिवेश को उजागर करती पुस्तकें लिखी जाएं।

बच्चों की अनेक पुस्तकों में स्थानीय महत्व की लोककथाओं और वीर-गाथाओं को विषयवस्तु बनाया गया है। कन्नड़ में कमला रामास्वामी का लोककथाओं का संग्रह *अमूल्य रत्न* हाल ही में प्रकाशित हुआ है। सहज शैली में लिखे गए इस संग्रह का अच्छा स्वागत हुआ है। शिवशंकरी का *अम्मा सोन्ना कथाइगल* (तमिल) लोककथाओं का बहुत सुंदर संग्रह हैं, जिसमें गोपू ने चित्रांकन किया है।

तलवइ इल्लनकुमारन की *पिंजुनिला* (सुकोमल चंद्रकिरण) में पर्यावरण और पालतू पशुओं से लेकर राष्ट्रवाद जैसे विभिन्न रोचक विषयों पर छोटी-छोटी

कविताएं हैं।

स्थानीय नायकों के जीवन और कार्यों पर आधारित कथाओं पर भी पुस्तकों की कमी नहीं है। तमिलनाडु में , कोट्टानोग्मन , उम्मदुरई, वी.ओ.सी., भारतीयार, कामराज, अन्नादुरई आदि ऐसे ही स्थानीय नायक हैं। केरल में वेलुथंपी या पलियाथच्चन या फिर कुंजली मरिक्कर हैं। कर्नाटक के अपने स्थानीय नायक-नायिकाएं हैं जिनमें रानी किट्टम्मा से लेकर विश्वेश्वरैया तक अनेक लोग शामिल हैं। आंध्र प्रदेश में टी. प्रकाशम और महान क्रांतिकारी सीताराम राजू का नाम अग्रणी है। लेकिन इन सबसे ऊपर है तेनालीराम जो स्वयं में ऐतिहासिक चरित्र बन चुका है। तेनालीराम देशभर के बच्चों में लोकप्रिय है और बीरबल की भांति अपनी वाक्पटुता और हाजिर जवाबी के लिए प्रसिद्ध है। यही एक ऐसा चरित्र है जो देश के शेष भागों में भी जाना जाता है।



रेखांकन : पंकज झा

देश के अन्य भागों में चल रहे रुझान के अनुरूप दक्षिण भारतीय भाषाओं में भी चित्रों से सुसज्जित पुस्तकों और बच्चों की कविताओं के संग्रह आ रहे हैं। *हड्डू, कुनी, काली* कन्नड़ में बच्चों की कविताओं का ऐसा ही लोकप्रिय संग्रह है। गुज्जर के चित्रांकन ने इस पुस्तक को और भी आकर्षक बना दिया है। पी. पुष्पनगडन द्वारा संकलित *अदिप्प थिंजा नादानपातुकल* (मलयालम) घर-घर में प्रचलित लोकगीतों से बच्चों का परिचय कराता है। चल्ला राधाकृष्ण के संग्रह *पिल्लला पातलु* की कविताओं में गीतात्मकता के साथ-साथ मुहावरों का सुंदर प्रयोग किया गया है। इस संग्रह में देशभक्ति से ओत-प्रोत कविताओं के अलावा कुछ कविताओं में चंद्रमा, तारों और वर्षा का सुंदर चित्रण किया गया है।

विज्ञान को आधार बनाकर बहुत-सी रोमांचक कथाएं लिखी गई हैं। तमिल में काल्वी गोपालकृष्ण की *पराक्कुम पप्पा* वैज्ञानिक लेखन के क्षेत्र में अग्रणी पुस्तक है जिसमें अद्भुत रचनात्मकता के साथ कहानियों के माध्यम से विज्ञान को बच्चों तक पहुंचाने का काम किया गया है। इसी प्रकार मलयालम लेखक शिवदास की पुस्तक *कीयो कीयो* में प्रकृति के शक्तिमान स्वरूप की कथा कही गई है। उन्हीं की एक और पुस्तक *पडिक्कन पडिक्कम* कहानी के माध्यम से पढ़ने के आनंद के साथ-साथ बहुत कुछ सिखाती भी है।

बाल-साहित्य में पर्यावरण को भी समुचित महत्व दिया गया है। शिशु संगमेश के कविता संग्रह *हूवीना शाले* में पर्यावरण के महत्व और प्रकृति से तालमेल की जरूरत रेखांकित की गई है।

बच्चों के लिए नाटक बहुत कम और लंबे अंतराल के बाद लिखे जाते हैं। यही एक क्षेत्र है जहां अधिक पुस्तकों की जरूरत महसूस की जाती रही है। नाट्य लेखन में इस शून्य को भरने के कुछ प्रयास किए गए हैं। रेवती का *थाथा वंदार* (तमिल) मनोरंजन से भरपूर नाटकों का संग्रह है, जिनमें सूक्ष्म संकेतों से मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था का संदेश दिया गया है। कूथूरन का एकांकी नाटक *भयमकोल्लाथू पप्पा* का उद्देश्य बच्चों में नई प्रेरणा और ऊर्जा का संचार करना है।

पहेलियों और क्षणिकाओं को आमतौर पर पुस्तक के रूप में संकलित कर लिया जाता है। लेकिन इस श्रेणी की अधिकतर पुस्तकें बच्चों पर कोई छाप छोड़ने में विफल रही हैं। एक पुस्तक जिसने मुझे सचमुच प्रभावित किया है वह है मलयालम में पी.आई. शंकरनारायण की *उत्तरामेंथे*।

बच्चों के लिए सूचनाप्रद पुस्तकों की चर्चा करें तो केरल का नाम सबसे ऊपर आता है। जिन कुछ पुस्तकों ने मुझे प्रभावित किया है वे हैं, माधव पणिक्कर की *धूरे धूरे धूरे* (तारों और आकाशगंगा के बारे में), वी.के. दामोदरन की *जंतु लोकाथिले इंजीनियर मार* (जंतु जगत के निर्माता) और तेलुगु में सत्यनारायण की पुस्तक *कनाकिटे जलयविद्यागल* (गणित का जादू)।

पत्रिकाओं के प्रकाशन में भी केरल सबसे आगे है। राज्य में बच्चों की करीब 25 पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं जिनमें कुछ की प्रसार संख्या दो लाख प्रतियों तक है। जाहिर है कि राज्य में साक्षरता की सबसे ऊंची दर के फलस्वरूप ही इतनी अधिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है।

भारत में बाल-साहित्य को समृद्ध करने के लिए यहां पर कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं।

नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, साहित्य अकादेमी को सभी भारतीय भाषाओं में अच्छी पांडुलिपियों का चयन कर उनका अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की व्यवस्था करनी चाहिए। प्रकाशन के सर्वाधिकार (कापीराइट) भारतीय प्रकाशन महासंघ के माध्यम से भारत के विभिन्न भाषाई प्रकाशकों को दिए जा सकते हैं।

इस प्रकार के उपायों से पुस्तकों की उत्पादन लागत कम की जा सकती है क्योंकि एक ही चित्र सभी भाषाई संस्करणों में प्रयोग किए जा सकते हैं और आवरण में भी केवल भाषा विशेष के अनुरूप पुस्तक का नाम और अन्य विवरण बदलने की जरूरत होगी।

नेशनल बुक ट्रस्ट और प्रकाशन विभाग अनेक श्रेष्ठ सूचनाप्रद किताबों, सत्यकथाओं के संग्रह अंग्रेजी में प्रकाशित कर रहे हैं। मनोरमा जफा की द *बायोलोजिकल क्लॉक* (प्रकाशन विभाग), दिलीप एम. साल्वी की *रोबोट्स्* (एन.बी.टी.), आर.के. मूर्ति की *ग्रेट मैन, ग्रेट डीडस्* (प्रकाशन विभाग) और सिगरून श्रीवास्तव की *ब्रेव चिल्ड्रन* (एन.बी.टी.) ऐसी ही रचनाएं हैं। इस प्रकार की पुस्तकें सभी भारतीय भाषाओं में बच्चों को उपलब्ध होनी चाहिए।

अब सवाल यह है कि इसे करेगा कौन? किसी न किसी को तो पहल करनी ही होगी। □

(अंग्रेजी से अनुवाद : उमाकांत)

बच्चों के व्यक्तित्व का विकास

***'बाल भवन' एक ऐसा आंदोलन है जिसके अंतर्गत बच्चे अपनी निजी संकल्पना के आधार पर स्वतंत्रतापूर्वक रचना करते हैं। यहां बच्चों को स्कूल-पद्धतियों के पारंपरिक कार्य-भार के भय से रहित खेल-खेल में कार्य करते हुए बहुत कुछ सीखने में सुविधा होती है। 'बाल भवन' की इस संकल्पना से बच्चे को मनोरंजन के साथ सीखने में सहायता मिलती है। राष्ट्रीय बाल भवन की गतिविधियों का परिचय दे रही हैं* मधु पंत**

बच्चों में सृजनात्मक क्षमता को बढ़ाने की एक अद्वितीय संस्था 'बाल भवन' की स्थापना सन् 1956 में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने तुर्कमान गेट, दिल्ली में की थी। तब से 'बाल भवन' का देश में चहुंमुखी विकास होता जा रहा है। 'बाल भवन' एक ऐसा आंदोलन है जिसके अंतर्गत बच्चे अपनी निजी संकल्पना के आधार पर स्वतंत्रतापूर्वक रचना करते हैं। यहां बच्चों को स्कूल-पद्धतियों के पारंपरिक कार्य-भार के भय से रहित खेल-खेल में कार्य करते हुए बहुत कुछ सीखने में सुविधा होती है। 'बाल भवन' की इस संकल्पना से बच्चे को मनोरंजन के साथ सीखने में सहायता मिलती है। यहां के स्वच्छंद वातावरण में बच्चा स्वाभाविक रूप से अपनी कल्पना की अभिव्यक्ति करता है। बच्चे नृत्य, नाटक, संगीत, चित्रकला, लकड़ी के कार्य आदि विविध माध्यमों से सीखते हैं। ये सभी कार्यकलाप बच्चे के संपूर्ण विकास में सहायक होते हैं। बच्चे वैज्ञानिक उपकरणों से खेलने एवं सीखने के लिए स्वतंत्र हैं और कंप्यूटर, एअरो माडलिंग, शिप-माडलिंग, खगोलविज्ञान, जीवविज्ञान, प्राणिविज्ञान तथा इलैक्ट्रानिक्स आदि सीखते हैं। इन सभी विविध कार्यकलापों से बच्चों को अपनी वैज्ञानिक रुचि विकसित करने का अवसर मिलता है जिससे वे कल्पनाशील, दक्ष और सृजनशील बनते हैं। 'बाल भवन' के कार्यकलापों द्वारा बच्चे की आंतरिक क्षमता का पता लगता है तथा उसे स्वयं को अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है।

बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दिल्ली के सभी भागों में 52 'बाल भवन केंद्र' खोले गए हैं क्योंकि सभी बच्चे केंद्रीय बाल-भवन कार्यालय के कार्यकलापों में भाग नहीं ले पाते। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित केंद्र दलित, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, विकलांग और मंदबुद्धि वाले बच्चों को भी इन सृजनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जवाहर बाल भवन मांडी में भी एक बाल भवन स्थापित किया गया है।

इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न राज्यों में 70 राज्य बाल भवन खोले गए हैं। ये बाल भवन 'राष्ट्रीय बाल भवन' से संबद्ध हैं, जिन्हें समय-समय पर अपनी विशेष परियोजनाएं स्थापित करने के लिए अनुदान-राशि भी प्रदान की जाती है। राज्य बाल भवनों के बच्चे बाल भवन में आयोजित राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों में भाग लेते हैं।

'बाल भवन' की गतिविधियों के अंतर्गत यहां राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थान केंद्र भी है जहां वयस्कों एवं प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। प्रशिक्षण के इन पाठ्यक्रमों के अनुरूप शिक्षक उन पर कार्य करते हैं। राष्ट्रीय प्रशिक्षण संसाधन केंद्र की गतिविधियां शिक्षकों को लक्ष्य करके आयोजित की गई हैं।

'राष्ट्रीय बाल भवन' का 'बाल संग्रहालय' अपने आप में विलक्षण है। बाल संग्रहालय में कई प्रदर्शनियां लगाई गई हैं जैसे 'हमारा भारत', 'लघु चित्र शैली', 'गौरव गाथा' तथा 'सूर्य' प्रदर्शनी। इसके अतिरिक्त स्थायी एवं अस्थायी प्रदर्शनियां भी समय-समय पर आयोजित की जाती हैं। राष्ट्रीय बाल संग्रहालय का द्वार सभी बच्चों एवं बड़ों के लिए खुला है।

यह संग्रहालय बच्चों की अपनी ही दुनिया है जहां उन्हें अवलोकन, स्पर्श, खोज करने, भाग लेने, आनंद उठाने और सीखने की खुली छूट है। राष्ट्रीय बाल संग्रहालय नई शिक्षा नीति की दिशा में योगदान में सक्षम है क्योंकि इसके श्रव्य-दृश्य अनुभव स्कूली शिक्षा के पूरक और उसकी वृद्धि में सहायक हैं।

'बाल भवन' का उद्देश्य बच्चों की सृजनात्मक क्षमता का विकास कर उनमें नेतृत्व की भावना, विश्लेषण की क्षमता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना है ताकि उनका सर्वांगीण विकास हो सके।

'बाल भवन' की गतिविधियां बच्चों को न केवल स्वयं करके सीखने व खेल-खेल में सीखने का अनुभव प्रदान करती हैं बल्कि स्वयं सीखकर प्राप्त होने वाले असीम आनंद की उपलब्धि भी करती हैं।

जहां तक बच्चे के मनोविज्ञान का संबंध है, बालक जिज्ञासु होता है- नई चीजों के संबंध में जानने की उसकी उत्सुकता अपरिमित होती है, उसमें एक खोजी प्रवृत्ति विद्यमान होती है, वह कौतूहलप्रिय है और स्वयं को अभिव्यक्त करने के अवसर उसमें आत्मगौरव का भाव भरते हैं। अच्छे कामों के करने पर सकारात्मक रूप से मिलने वाला बढ़ावा उसके स्वस्थ एवं आश्वस्त व्यक्तित्व के निर्माण में दूरगामी प्रभाव डालता है। बालक का मन बहुत कोमल भी है- जरा से आघात से वह अत्यंत प्रभावित होता है। संवेदनशीलता बच्चे का एक और जन्मजात गुण है। इसीलिए परिवेश में होने वाली हर घटना उस पर अपना गहरा प्रभाव डालती है। बहुत अधिक अंकुश, बहुत अधिक बंधन

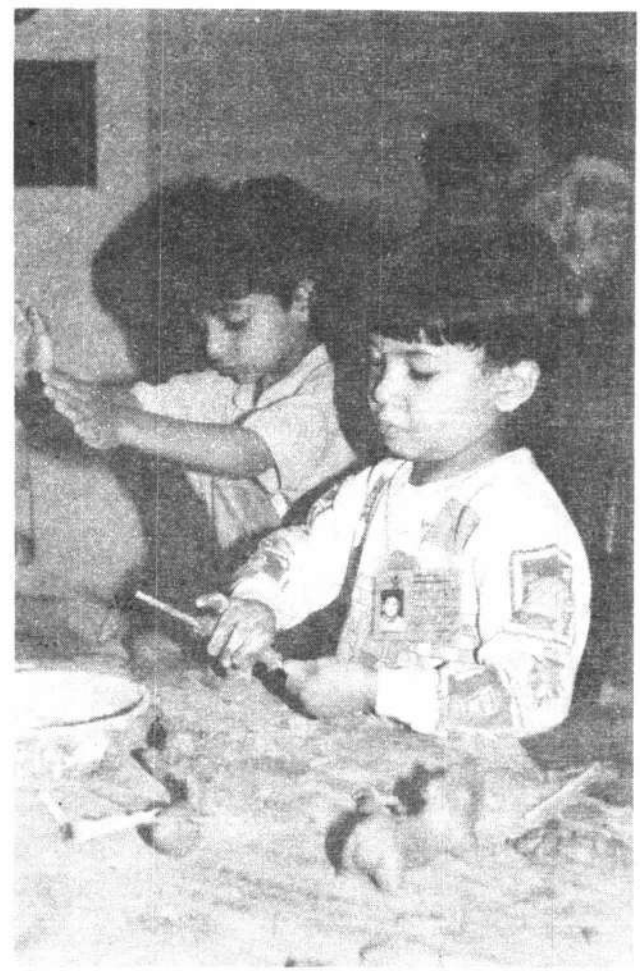
एवं बहुत अधिक अनुशासन उसके नैसर्गिक विकास में बाधा डालते हैं– यही कारण है कि बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि उसे औपचारिक शिखा के बंधे-बंधाए क्रम के अतिरिक्त अनौपचारिक रूप से काम करने के अवसर भी दिए जाएं। प्राय: औपचारिक शिक्षा के तरीकों के कारण बालक की सृजनात्मकता को उभरने के उचित अवसर नहीं मिल पाते– यहीं पर आती है 'बाल भवन' की भूमिका। हर शिक्षाविद् या मनोवैज्ञानिक यह कहता है कि बालक को उसकी आयु, योग्यता और क्षमता के अनुसार काम करने का मौका मिलना चाहिए। किंतु हमारी शिक्षा प्रणाली में ऐसा अवसर कहां? एक कक्षा में पढ़ने वाले बच्चों के लिए एक आदर्श मानकित पाठ्यक्रम होता है जिसमें समान आयु वर्ग के (कक्षा के) बच्चों की विभिन्न योग्यता या क्षमता को दृष्टि में रखा जाता है, अत: विभिन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

'बाल भवन' की संकल्पना के अंतर्गत बच्चे के हर कार्यकलाप, उसकी रुचि, क्षमता व आयु के अनुसार आयोजित किए जाते हैं। यही कारण है कि बच्चा हर समय सीखने को तत्पर रहता है–सीखने की यह तत्परता वह तत्व है जो शिक्षा को प्राप्त करने का प्रथम सोपान है।

बालक की आयु, योग्यता और सीखने की क्षमता के साथ जुड़ी है– बालक के सीखने की गति। क्योंकि एक ही आयुवर्ग के बच्चों की योग्यता व सीखने की क्षमता अलग-अलग होती है, हर बच्चे की सीखने की गति भी अलग-अलग होती है। इस दृष्टि से सबसे अच्छी शिक्षा प्रणाली वह है जिसमें शिक्षा वैयक्तिक रूप से हर बच्चे को उसके सीखने की गति के अनुरूप दी जानी संभव हो सके। हमारी शिक्षा प्रणाली में वैयक्तिक रूप में सीखने का कोई अवसर नहीं है जबकि 'बाल भवन' की कार्य प्रणाली में हर बच्चा अपनी स्वाभाविक गति से, रुचि से, अपनी इच्छानुसार काम सीखता है और इस प्रकार न कोई बच्चा कक्षा में आगे निकलता है और न ही वह पिछड़ता है। एक-दूसरे के प्रति स्वस्थ स्पर्धा की भावना कुछ हद तक उचित है तथा सीखने में मदद करती है। किंतु आज की शैक्षिक प्रक्रिया में जिस प्रकार से प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है, उससे बालक पर अवांछित दबाव पड़ने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। आज के परिवेश में जिस प्रकार से नंबरों की होड़ लगी हुई है उससे यह स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष जैसे मनोविकारों को जन्म तो देती ही है, साथ ही बालक के व्यक्तित्व को तनावग्रस्त करके जीवन भर के लिए कुंठित भी कर देती है। परीक्षा का तनाव, सख्त पाठ्यक्रम-पुस्तकों और गृह कार्य के बोझ ने मानो बालकों के व्यक्तित्व को ही बौना बना दिया है। ऐसी स्थिति में एक सृजनशील व्यक्तित्व के विकास का अवसर कहां है? इस प्रकार के वातावरण में एक अतिरिक्त शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता।

सृजनात्मकता मनुष्य की आधारभूत वृत्ति है जो व्यक्ति को रचनात्मक और नूतन कार्यों को करने की ओर प्रेरित करती है। औपचारिक शिक्षा में रचनात्मकता का बहुत ही कम स्थान है। कक्षा में सारा जोर लिखने, पढ़ने और गणित– जिन्हें अंग्रेजी में '3 आर' कहा जाता है– पर दिया जाता है। इस प्रकार से आज की स्कूली शिक्षा रटे-रटाए ज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गई है। रोजमर्रा में किया जाने वाला असर्जनात्मक कार्य निश्चित रूप में बच्चे के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। 'बाल भवन' बच्चों की सृजनात्मक क्षमता को उभारने के उद्देश्य से उन्हें रचनात्मक और नए कामों को करने तथा दो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बीच सह-संबंध स्थापित करने की ओर प्रेरित करता है। उसकी सौंदर्यबोध क्षमता बढ़ती है और प्रकारांतर से विकास होता है– उनके व्यक्तित्व का।

बालक के विकास की प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाएं होती हैं। जैसे-जैसे बच्चा शारीरिक रूप से विकसित होता है उसका मानसिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और संवेदनात्मक विकास भी होता है। छोटे बच्चे के ध्यान का अवधान अथवा ध्यान की अवधि बहुत कम होती है। ध्यान की यह अवधि उम्र बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती है। ध्यान के इस अवधान की कम अवधि के अतिरिक्त छोटे बच्चे के मस्तिष्क और उसके कार्य-संचालन में पूर्ण रूप से सामंजस्य नहीं होता। ऐसे समय में आवश्यक है कि उसे विभिन्न प्रकार की उन शारीरिक गतिविधियों से अवगत कराया जाए ताकि सीखने के क्रम में मस्तिष्क और हाथ के असहज तालमेल के कारण कोई बाधा न पहुंचे। इस बात को ध्यान में रखते हुए 'बाल भवन' में छोटे बच्चों के लिए मिट्टी का काम, पेपरमैशी, मिले-जुले कार्यकलाप जैसी गतिविधियां प्रदान की जाती हैं। छोटे बच्चों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, उनके मनोविज्ञान और रुचियों की दृष्टि से उन्हें विशेष प्रकार की गतिविधियां प्रदान की जाती हैं।



शिल्प गतिविधियों में लगे बच्चे

जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता है, उसकी गतिविधियों का दायरा भी बढ़ता चला जाता है और अंतत: एक बच्चा अपनी योग्यता और दक्षता के अनुसार सभी कार्यों को सुचारु रूप में कर सकता है। 'बाल भवन' की वैज्ञानिक गतिविधियां यथा– एअरो माडलिंग, तारामंडल, कंप्यूटर, रेडियो इलैक्ट्रानिक के द्वारा बच्चों की खोजी प्रवृत्ति का विकास होता है। नाटक, नृत्य, हस्तकला आदि गतिविधियां उसके आत्मगौरव को बढ़ाती हैं। यह आत्मगौरव उसे आत्माभिव्यक्ति के उन अवसरों के द्वारा मिलता है जो 'बाल भवन' में सहज ही उपलब्ध हैं। बच्चे की यह आत्माभिव्यक्ति सृजनात्मक प्रदर्शन में, रचनात्मक कला में, विज्ञान, अभिनव प्रयोगों में एवं सृजनात्मक लेखन तथा साहित्यिक गतिविधियों द्वारा होती है और आत्माभिव्यक्ति के प्रकाशन का अवसर मिलना बच्चों की एक अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

'बाल भवन' का एक महत्वपूर्ण पक्ष, सभी बच्चों की सृजनात्मक आवश्यकताओं की आपूर्ति करना है, चाहे वह किसी भी लिंग, वर्ग, धर्म, जाति, भाषा और किसी भी सामाजिक स्तर के हों। 'बाल भवन' विशेष वर्ग के बच्चों के लिए विशेष रूप के कार्यक्रम भी तैयार करता है और उन बच्चों के लिए कार्य करता है जो शारीरिक रूप से विकलांग और मानसिक रूप से अक्षम हों।

'बाल भवन' बच्चों के उस विशेष वर्ग के बच्चों की सृजनात्मकता को दृष्टिगत रख उस दिशा में भी काम करता है जो अत्यंत सृजनशील है। 'बालश्री' योजना विशेष रूप से उन्हीं सृजनशील बच्चों के लिए शुरू की गई है जिनके भीतर असाधारण सृजनात्मक क्षमता की ज्योति विद्यमान हो। 'बालश्री' योजना की अवधारणा इस कथन पर आधारित है कि – 'एक सृजनशील व्यक्ति समाज को जो योगदान दे सकता है वह एक बुद्धिमान व्यक्ति नहीं।' यह एक निर्विवाद सत्य है कि समाज के उत्थान के लिए एक बुद्धिमान व्यक्ति की अपेक्षा एक रचनाकार व्यक्ति का योगदान अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसा ही मत ए. व्हाइटनी गिसवोल्ड का है जिनके अनुसार– स्वर्ग से एक ज्योतिपुंज प्रज्वलित होता है। उसे कौन ग्रहण करता है? आम आदमी? कदापि नहीं। कोई व्यक्ति विशेष? सदैव। यह वही और केवल वही व्यक्ति है जो एक कलाकार, आविष्कारक, अन्वेषक, विद्वान, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक नेता या कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में प्रकाश के इस स्रोत के निकटतम होता है और उसके सत्व को अपने सहयोगियों तक प्रेषित करता है। 'बालश्री' योजना का आधार यही है।

बच्चों का कोई भी कार्यक्रम तब तक संपूर्ण नहीं होता जब तक शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान न किए जाएं, क्योंकि बच्चों तक पहुंचने का शिक्षक ही एकमात्र सेतु हैं। 'बाल भवन' के शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों को, 'बाल भवन' की संकल्पना के अनुसार, बच्चों के मनोविज्ञान के आधार पर विशेष रूप में बनाया जाता है। एकीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रम इसी प्रकार का एक कार्यक्रम है जहां एक शिक्षक को विभिन्न प्रकार की अनौपचारिक गतिविधियों से परिचित कराया जाता है। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शिक्षक को विभिन्न सृजनात्मक गतिविधियों से परिचित कराना है ताकि जब वह बच्चों के साथ कार्य करता है तो वह उनकी सृजनात्मक क्षमता को पहचानने में सफल हो सके तथा उन्हें अपनी विशेष क्षमता में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर सके। यह एक शिक्षक की ही जिम्मेदारी है कि वह बच्चे की प्रतिभा को पहचानकर उसे आगे बढ़ने में मदद करे।

एकीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रमों का दूसरा उद्देश्य शिक्षक को विभिन्न रचनात्मक कार्यों का प्रशिक्षण देना है ताकि जब वह कक्षा में औपचारिक शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम की तैयारी कर रहा हो तो अपने प्रशिक्षण के अनुभव के आधार पर शिक्षण सामग्री स्वयं तैयार कर सके।

'बाल भवन' के राष्ट्रीय प्रशिक्षण अनुसंधान केंद्र (एनटीआरसी) में चलाए जाने वाला दृश्य कलाओं का प्रशिक्षण कार्यक्रम अपने आप में एक अभिनव प्रयोग है। दृश्य कलाओं के इस विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम की अवधारणा का आधार अपनी शिक्षण प्रणाली को सकारात्मक रूप में इस प्रकार सुनियोजित करना है ताकि सीखना, बच्चे के लिए एक आनंददायी अनुभव बन सके। प्राय: यह देखा गया है कि विद्यालयी प्रणाली में कला शिक्षक प्रदर्शन कला, शिक्षक और विषय शिक्षक अपने-अपने अलग दायरे में कार्य करते हैं और उनके बीच में किसी भी प्रकार का कोई वैचारिक आदान-प्रदान नहीं होता। सीखने की प्रक्रिया में कई ऐसी कठिन संकल्पनाएं होती हैं जिन्हें समझने में बच्चे को कठिनाई होती है। साधारणत: ऐसी कठिन संकल्पनाएं आगे सीखने के रास्ते में बाधक बन जाती हैं और इस प्रकार से शिक्षक और शिक्षार्थी का संबंध केवल शिक्षण तक ही सीमित रह जाता है। किंतु यदि शिक्षा की ये कठिन संकल्पनाएं किसी नए तरीके से बालक के सामने प्रस्तुत की जा सकें तो सीखना न केवल अर्थपूर्ण बन सकता है बल्कि साथ-साथ बच्चे को और अधिक सीखने की ओर प्रेरित भी कर सकता है। दृश्यकला की इस कार्यशाला में विषय के शिक्षक, कला शिक्षक तथा प्रदर्शन कला के शिक्षक के बीच एक आदर्श सहभागिता इस उद्देश्य से आयोजित की जाती है ताकि शिक्षा की कठिन संकल्पनाओं को सरल व रोचक बनाया जा सके और सीखने की प्रक्रिया बालक के लिए एक सुखद अनुभव बने। शिक्षक पाठ्यक्रम में से उन कठिन संकल्पनाओं की पहचान करता है तथा उन्हें सृजनात्मक तथा नूतन प्रदर्शन के लिए परिवर्तित कर सकता है ताकि सीखना सरल तो हो ही, साथ ही आनंददायी भी हो। 'राष्ट्रीय बाल भवन' द्वारा यह प्रयोग केंद्रीय विद्यालय संगठन के उच्चतर माध्यमिक शिक्षकों के साथ बहुत सफलतापूर्वक संचालित किया जा रहा है।

चाहे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम हो या बच्चों की गतिविधियां, 'बाल भवन' प्रणाली, शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच एक अनौपचारिक वातावरण में होने वाली सक्रिय सहभागिता पर विश्वास करता है। बच्चों के लिए बाल केंद्रित दृष्टिकोण से अर्थपूर्ण एवं अभिनव कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं ताकि शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच सक्रिय सहभागिता हो– चाहे वह बच्चों की अपनी स्वयं की पुस्तक 'अक्कड़-बक्कड़'- बच्चों की, बच्चों के द्वारा बच्चों के लिए बनाई गई पुस्तक– का निर्माण हो या 'मेरी किताब' हो जिसे एक कार्यशाला के रूप में प्रशिक्षार्थियों और बच्चों के सहयोग से बनाया गया है अथवा राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम, युवा पर्यावरण विज्ञानियों का राष्ट्रीय सम्मेलन, राष्ट्रीय साहित्यिक गोष्ठी, संस्कृति शिल्प संरक्षण सत्र या राष्ट्रीय बालसभा हो।

'बाल भवन' बच्चे को आत्म प्रकाशन हेतु संपूर्ण स्वतंत्रता देने में विश्वास रखता है। अपने चारों ओर की दुनिया की खोज करने की यह छूट बच्चे को और अधिक जिज्ञासु, अधिक चिंतनशील, अधिक औचित्यपूर्ण, अधिक तर्कपूर्ण, अधिक आत्म नियोजित और अधिक सृजनशील और अंतत: एक सक्रिय व इच्छुक शिक्षार्थी बनाती है। □

पुस्तक चर्चा

बाल-साहित्य को समृद्ध करती पुस्तकें

विभा देवसरे

हिंदी में जहां मौलिक साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुआ है, वहीं सदी के अंतिम दशक में भारतीय भाषाओं से श्रेष्ठ बाल-साहित्य अनूदित होकर आया है। इस दिशा में साहित्य अकादेमी ने जहां जसबीर भुल्लर की *जंगल टापू* (पंजाबी), कल्वि गोपालकृष्णन की *वनदेवी* (तमिल) अनिता देसाई की *बिल्ली हाउस बोट पर* (अंग्रेजी) आदि प्रकाशित की हैं, वहीं भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने सत्यजित राय की बंगला बाल-कथाओं का संग्रह और उनके तीन उपन्यास हिंदी में प्रकाशित किए हैं।

सत्यजित राय की रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में अनूदित होकर तो छपती रही हैं, लेकिन कहानियों का संग्रह हिंदी में पहली बार प्रकाशित हुआ है, और पाठक वर्ग की ओर से इनका स्वागत भी हुआ है।

बंगला बाल-साहित्य को सत्यजित राय के पितामह उपेंद्र किशोर रायचौधुरी, पिता सुकुमार राय ने तो समृद्ध किया ही था, सत्यजित राय ने भी एक से एक बेजोड़ रचनाएं दी हैं। *बाघ की तलाश, हंसने वाला कुत्ता* – दोनों पुस्तकों के अनुवादक रणजीत साहा ने भूमिका में लिखा है कि सत्यजित राय के बाल तथा किशोर साहित्य में, विज्ञान, मनोविज्ञान, कल्पना शक्ति, संयोग और अति प्राकृतिक शक्तियों का अद्‌भुत समन्वय है। कथानक ऐसे रोचक एवं अप्रत्याशित मोड़ ले लेते हैं कि पाठक बीच में कहानी को छोड़ ही नहीं पाता है और चमत्कृत रह जाता है। यह भी सच है कि सत्यजित राय के कुछ चरित्र जैसे जासूस फेलूदा, वैज्ञानिक प्रोफेसर शंकु बच्चों के प्रिय पात्र बन गए हैं।

बाघ की तलाश पुस्तक में तीन छोटे उपन्यास हैं। पहला उपन्यास है 'गोलोकधाम का रहस्य'। गोलोकधाम उस घर का नाम है जिसे गोलोक विहारी दत्त ने बनवाया था। अब उस घर में उनके बड़े बेटे नीहार दत्त और छोटे बेटे सुबीर दत्त रहते हैं। नीहार दत्त वैज्ञानिक रहे हैं। अमेरिका में रिसर्च कर रहे थे। एक दिन अचानक प्रयोगशाला में विस्फोट हुआ और नीहार दत्त घायल हो गए और उनकी आंखें सदा के लिए जाती रहीं। नीहार दत्त बहुत महत्वपूर्ण खोज कर रहे थे। अगर वह पूरी हो जाती तो उसके लिए उन्हें अवश्य नोबल प्राइज मिलता। इस काम में उनका एक सहायक सुप्रकाश चौधुरी भी हाथ बंटाता था, वह घायल नहीं हुआ। विस्फोट के बाद नीहार दत्त अपने सारे कागज, जो अविष्कार से संबंधित थे, लिफाफे में सील करके कलकत्ता में अपने मकान में ले आए। एक रात अंधे नीहार दत्त बाबू के कमरे में एक चोर आया, लेकिन वह कुछ ले नहीं जा सका। सुबीर दत्त को चिंता हुई कि बड़े भाई नीहार दत्त के ऊपर कहीं कोई भारी मुसीबत न आ जाए। इसीलिए वह जासूस फेलूदा से मदद लेने आए। फेलूदा जब गोलोकधाम पहुंचे तो उन्होंने नीहार दत्त के कमरे की छानबीन की और पाया कि आलमारी में से रिसर्च के सील पेपर तथा तीस हजार रुपये चोरी हो गए। इसके बाद फेलूदा की जासूसी बुद्धि सक्रिय होती है। कथानक बड़ी तेजी से आगे बढ़ता है। अनेक रहस्यमय गुत्थियों को सुलझाकर पूरे षडयंत्र का रहस्य खुल जाता है। कथानक में रोचकता और जासूस बुद्धि की पकड़ अत्यधिक प्रभावशाली है।

दूसरा उपन्यास 'मास्टर अंशुमान' भी रहस्य और रोमांच से पूर्ण है। इसमें एक बारह-तेरह साल के लड़के मास्टर अंशुमान की कहानी है, जिसे एक फिल्म में काम करने के लिए चुना जाता है। पूरी फिल्म राजस्थान में अजमेर के पास शूट होती है। मास्टर अंशुमान फिल्म यूनिट के साथ जाता है। शूटिंग शुरू होती है। इस दौरान की घटनाओं, पात्रों के अभिनय और शूटिंग का वर्णन लेखक ने बहुत ही रोचकता से किया है। साथ ही फिल्म शूटिंग की तकनीकी-बारीकियों की भी जानकारी महत्वपूर्ण है। शूटिंग के लिए लोहिया सेठ की कोठी ली गई थी। लोहिया सेठ के पास नीलकांत मणि थी जो काफी कीमती थी। फिल्म में डाकू की भूमिका करने वाला जग्गू उस्ताद इस नीलकांत मणि को चुराने की योजना सेठ के नए नौकर विक्रम के संग मिलकर बनाता है। मणि चोरी हो जाती है। अंत में अंशुमान और स्टंटमैन किशन भैया जग्गू उस्ताद को पकड़वाकर नीलकांत मणि वापस ले लेते हैं। यह उपन्यास भी रहस्य व रोमांच से परिपूर्ण है।

तीसरा उपन्यास 'बाघ की तलाश' है। इसमें एक लेखक सरकस पर उपन्यास लिखना चाहते हैं। इस बारे में वह कुछ बातें जानने के लिए हजारीबाग जाते हैं, जहां 'दि ग्रेट मैजिस्टिक सरकस' चल रहा है। पता

बाघ की तलाश तथा हंसने वाला कुत्ता : सत्यजित राय. अनुवादक : रणजीत साहा. प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली. पृष्ठ संख्या : क्रमशः 101 व 215. मूल्य : क्रमशः 80 रुपये व 75 रुपये

चलता है कि उस सरकस का सबसे बड़ा शेर सुल्तान सरकस से भाग गया है। पूरे शहर में तहलका मचा है। सब भयभीत हैं। ये लोग सरकस के मालिक से मिलकर जानकारी लेते हैं कि आखिर शेर भागा क्यों । तभी पता चलता है कि शेर का असली रिंग मास्टर करंदीकर है, लेकिन हाल ही में एक और रिंग मास्टर रखा गया है। इन दिनों सरकस में शेरों का खेल दिखाने का काम नए मास्टर को ही सौंपा गया है। एक शो में करंदीकर की कमांड शेर (सुल्तान) नहीं मानता और अगले दिन वह मौका पाकर सरकस से भाग जाता है। करंदीकर इसके लिए सरकस के मालिक को दोषी ठहराते हैं। वह कहते हैं कि जानवर एक ही ट्रेनर का कमांड मानता है, दो ट्रेनर का नहीं। चंद्रन को शेर मिलता है लेकिन उसे पंजा मारकर भाग जाता है। अंत में करंदीकर उसे पकड़कर लाता है। इस पूरे कथा विन्यास में एक रोमांचक कथायात्रा का आनंद मिलता है।



सत्यजित राय की विशिष्ट शैली और कथानक पर उनकी पकड़, उनकी विद्वत्ता की विशेषता रही है। तीनों उपन्यास इतने पठनीय हैं कि एक ही बैठक में समाप्त किए बिना पाठक का उठना मुश्किल है। पुस्तक में सत्यजित राय के बनाए कुछ चित्र भी दिए गए हैं। लेखक और कलाकार एक साथ उभरकर आया है।

दूसरी पुस्तक है *हंसने वाला कुत्ता* । इसमें सत्यजित राय की तेरह कहानियां संकलित हैं। सभी कहानियां मनोरंजन और रहस्य-रोमांच का पूरा आनंद देती हैं। 'प्रोफेसर रोनदी की टाइम मशीन' एक सशक्त विज्ञान कथा है। 'हंसने वाला कुत्ता' बेहद रोचक कहानी है। असमंज बाबू अपना अकेलापन दूर करने के लिए एक कुत्ता खरीदकर लाते हैं और उसे पालते हैं। एक दिन उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता जब वह देखते हैं कि कुत्ता हंस रहा है। असमंज बाबू कुत्ते की हंसी का कारण जानना चाहते हैं। कुत्ता अक्सर हास्यास्पद स्थिति होने पर ही हंसता है, यह तो असमंज बाबू समझते हैं, लेकिन क्या कुत्ता भी



हंसता है, यह उनके लिए रहस्य का कारण बनता है। खोजी की तरह वे किताबों में, विशेषज्ञों के पास जाते हैं। कुत्ता कैसा भी हो, खाता-पीता है, खेलता, उछलता है, सोता-जागता है, रोता है और सपने भी देखता है, लेकिन हंसता हो, ऐसा कुत्ता आज तक किसी की जानकारी में नहीं आया। कुछ लोगों ने इसे झूठ समझा। लेकिन जिसने कुत्ते को हंसते हुए देखा उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। एक दिन इस हंसने वाले कुत्ते की खबर *स्टेट्समैन* अखबार में छपती है। और एक अमेरिकन वह कुत्ता खरीदने असमंज बाबू के घर आ जाता है। पहले तो वह कुत्ता लाख कोशिश के बाद भी नहीं हंसता है, लेकिन जब वह कुत्ता यह सुनता है कि अमेरिकन उसकी कीमत बीस हजार डालर देने को तैयार है तो कुत्ते को जोर से हंसी आ जाती है। असमंज बाबू तब समझ जाते हैं कि कुत्ता अपनी कीमत लगने पर हंस रहा है। और असमंजस बाबू अमेरिकन के साथ आए व्यक्ति से कहते हैं कि दुनिया की हर चीज की कीमत पैसे से नहीं चुकाई जा सकती है और वह कुत्ता बेचने से मना कर देते हैं।

इसी तरह सभी कहानियां पठनीय हैं, रहस्य-रोमांच और चटपटी कथाओं का संपूर्ण आनंद देती हैं। 'विषकोपरा' किशोर वय की उपजी तीक्ष्ण बुद्धि की करामात की कहानी है। चुप्पा भगवती क्या कुछ कर बैठेगा इसकी कल्पना भी किसी को नहीं हो पाती है। 'सहपाठी', 'कन्हाई', 'खगम', 'बातिक बाबू' भी ऐसी ही कहानियां हैं। साधारण चरित्र वाले ये पात्र जो हमारे घर-परिवारों, पड़ोस और समाज में आम है लेकिन वे किसी न किसी घटना, रहस्य और रोमांच के बीच अपनी जीवन-यात्रा में कैसे सक्रिय हैं, और किस तरह आम आदमी को प्रभावित करते हैं यह विश्लेषणात्मक दृष्टि, सत्यजित राय की ही पकड़ हो सकती है। पुस्तक के चित्रों में उन्होंने अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति को भी पूरी तरह उतारा है।

अनुवाद बहुत सरस और प्रवाहपूर्ण है– विषय कहीं भी दुरूह होकर ऊबाऊ नहीं हुआ है– पूर्ण रोचकता बनी रही है– इसके लिए

समीक्षा

•

कहानी संग्रह

बाल कहानियों का वृहद संग्रह

21 वीं सदी की कहानियां (दो खंडों में) ; संपादक : जाकिर अली रजनीश; नीरज एंटरप्राइज, एफ-3713; राजाजीपुरम, लखनऊ; पृष्ठ संख्या : 304; मूल्य : 200 रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक में, जो खंडों में विभाजित है, अनेक प्रसिद्ध और नए कहानीकारों की छोटी-छोटी कहानियां संकलित हैं। संपादक ने बाल कहानी का मूल अभिप्राय माना है- बाल मनोविज्ञान की तुष्टि। इनका कहना है कि पुराने ग्रंथों खासकर पुराण लोक और परीकथाओं को अदल-बदलकर ही हमारे बच्चों के लेखक लिखते रहे हैं। एक ही थीम को अनेकों ने अनेक बार लिखा, छपाया है। ऐसी कहानी बालकथाओं के रूप में कोई नया शिल्प नहीं दर्ज करा सकीं। सन 1947 से पहले की कहानी 'खोपड़ा सिंह' बड़ी प्रसिद्ध थी। गुलिवर की यात्रा जैसी बौनों की कहानियां भी हिंदी लेखकों ने बौना बदमाश, 'बौनों का देश' नाम से लिखीं और बच्चों ने पसंद कीं। अनेक बाल कहानियां विदेशी रचनाकारों की मूल कहानियों का 'एडाप्टेशन' भी हैं। मगर धर्म कथाओं में भी कौतूहल, शिक्षा, चमत्कार और प्रकृति प्रेम भरा है। पंचतंत्र की कथाएं मनुष्य और जीव जंतुओं की रोचक कथाएं है- जो बाल कहानी की समृद्ध परंपरा है। अत: संपादक की भूमिका का यह पक्ष गंभीर नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत संग्रह में नामचीन बाल लेखक- मस्तराम कपूर, हरिकृष्ण देवसरे, तैलंग, हसन जमाल, उर्मिल, मनोहर वर्मा, मनहर चौहान, मालती जोशी और विष्णु प्रभाकर तक की चर्चा है। इन्हें बाल-साहित्य का प्रमुख लेखक माना है, जबकि प्राय: 30 वर्षों से निरंतर बाल-साहित्य या कहानियां, उपन्यास लिखने वाले लेखक जयप्रकाश भारती, चंद्रदत्त इंदु, रत्नप्रकाश शील, विभा देवसरे, योगराज थानी का कहीं भी जिक्र नहीं है। ये सभी तीन-चार दशकों से निरंतर काम करते रहे हैं। इनमें कन्हैयालाल नंदन का भी नाम लिया जा सकता है, जो *पराग* का संपादन व बालकों के लिए लेखन कई दशक तक करते रहे।

उक्त संग्रह में नए लेखक-लेखिकाओं की अलबत्ता सौ से ऊपर की संख्या है, उनकी कहानियां भी अलग-अलग रसों को छूती हुई हैं, जैसे सावित्री परमार की कहानी 'उजली हंसी की याद', प्रतिमा कटियार की 'बादलों की चादर', उषा यादव की 'रसगुल्ला', बानो सरताज की 'थोड़ा-सा प्यार', मालती शर्मा की 'प्यास का धर्म', शकुंतला सिरोठिया की कहानी 'पुण्य का गुलमोहर' और विमला रस्तोगी की कहानी 'मैं अच्छा बनूंगा'- अच्छी हैं । इस संकलन को समेटने में अवश्य काफी मेहनत की होगी, संपादक ने । पर सभी कहानियों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि कुछ कहानियों की भाषा तो कक्षा 3 से 5 तक के बच्चों के लिए ही है, तो अनेक कहानियों की भाषा और विषय किशोरवय के या उससे बड़े बच्चों के लिए उपयोगी शैली पर आधारित है। इसमें संपादक के चयन का दोष कहा जा सकता है। भाषा में अनेक कहानियों में अंग्रेजी के शब्द भरे है- कंपास, मदर, मैडम, प्रिंसिपल आदि जो अब अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा पा रहे बच्चों की जरूरत की दृष्टि से अपेक्षित हैं- मगर हिंदीप्रियता या विस्तार की दृष्टि से अनमेल लगते हैं। मनोहर वर्मा की कहानी- 'शंकर आंदोलन', राजनारायण चौधरी की 'लकड़बग्घा', कल्पनाथ सिंह की 'शिकार' जैसी कहानी- 'गोमती', रमाशंकर की 'एक था चुन्नू' और प्रभात गुप्त की राजस्थानी क्षेत्र की कहानी 'बेलजी का ऊंट' नई और पठनीय है। बच्चों जैसी सामान्य और सरस कहानी मो. साजिद खान की 'शहतूत का पेड़' उस अंग्रेजी कहानी की याद ताजा करता है जो 'जाइंट आफ एपल गार्डन' के नाम से लोकप्रिय हुई थी।

वरिष्ठ कथाकार राजेंद्र अवस्थी की कहानी 'तमाचा' निश्चिय ही रोचक और लंबी है, दूसरे खंड में इनके अलावा हास्य लेखक के.पी. सक्सेना की कहानी 'मिर्जा चोया' निश्चय ही व्यंग्यात्मक है। कई लेखक-लेखिकाओं की कई कहानियां संकलन में समेटी है। स्वयं संपादक की भी दोनों खंडों में कई कहानियां है जैसे- 'टी फार टीचर', 'चाकलेट चोर', 'बेटी माने अप्पी', 'छोटी-सी बात'। स्वयं संपादक होते हुए अन्य बालकथा लेखकों की संख्या पूरी करने का काम उन्होंने खुद ही कर लिया है, जो अरुचिकर लगता है। कहानी के अंत में छपे रेखाचित्र बहुत साधारण हैं, यदि न भी होते तो भी बाल पाठकों का काम चल जाता। उक्त संकलन में मनोविज्ञान, हास्य, साहस, जासूसी और विज्ञान की झलक देने वाली कहानियां हैं। कुछ कहानियां नैतिकता और चरित्र निर्माण की भी हैं- निस्संदेह कहानियों की थीम विविध है मगर उन्हें तरतीब से संपादित करके एक के बाद एक नहीं लगाया है।

हर बाल कथाकार की शैली अलग-अलग है। कुछ कहानियों की बुनावट गत दशकों से लिखी जा रही आम बच्चों की कहानियों की जैसी है, उसमें नया शिल्प विधान कुछ भी नहीं है। कुछ कहानियां मात्र अन्य भाषाओं से 'एडाप्ट' की गई मालूम होती है। मौलिकता लिए हुए बहुत ही कम कहानियां है।

पुस्तक का मुखपृष्ठ चतुरंगा और बाल-आकर्षक है। संपादक 'रजनीश' पुरस्कृत और बाल विषयों पर लिखने वाले युवा हैं। इनकी विज्ञान लेखन में रुचि है और सात-आठ पुस्तकें प्रकाशित भी हैं। चूंकि इन दिनों में वैज्ञानिक कहानीकारों की कमी है अत: इनका प्रयास और तत्परता श्लाघनीय कही जा सकती है।

— **शक्ति त्रिवेदी**

आलोचना

बाल-साहित्य पर दो विशिष्ट पुस्तकें

समकालीन बाल साहित्य : परख और पहचान : सुरेंद्र विक्रम; कुशी प्रकाशन; अमीनाबाद, लखनऊ; मूल्य : 150 रुपये।

बाल साहित्य : शोध समीक्षा संदर्भ : सुरेंद्र विक्रम; : राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर; अमीनाबाद, लखनऊ; मूल्य : 250 रुपये।

हिंदी बाल-साहित्य में सृजनात्मक समीक्षा और स्तरीय शोध सामग्री की कमी एक लंबे समय से महसूस की जाती रही है। इसलिए इस शून्य को भरने का जब भी कोई प्रयास किया जाता है तो उसकी प्रशंसा होनी स्वाभाविक है। पर इसका यह अर्थ भी नहीं कि उस प्रशंसा में संतुलित आलोचनात्मक दृष्टि का ही अभाव हो।

इस परिप्रेक्ष्य में सुरेंद्र विक्रम की हाल में आई दो पुस्तकें क्रमशः *समकालीन बाल साहित्य: परख और पहचान* तथा *बाल-साहित्य शोध समीक्षा संदर्भ* कुछ कमियों के बावजूद बाल-साहित्यकारों के लिए एक बड़े अभाव की पूर्ति करती हैं। इन दोनों पुस्तकों के पीछे निस्संदेह सुरेंद्र विक्रम का श्रम और समय काफी लगा है।

समकालीन बाल साहित्य-परख और पहचान पुस्तक में उनके समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इक्कीस लेख संकलित हैं जो बाल-साहित्य की विविध समस्याओं, कुछ बाल-पुस्तकों एवं पत्रिकाओं की समीक्षाओं तथा वरिष्ठ बाल-साहित्यकारों के रचनात्मक योगदान पर आधारित हैं। पुस्तक के अंत में दो परिशिष्टों के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण बाल-पुस्तकों एवं आलेखों की क्रमवार सूची भी दी गई है।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें शामिल अधिकांश सामग्री सीमित एवं तात्कालिक दृष्टि से लिखी गई है और उसे पूर्व प्रकाशित रूप में ही पुनर्प्रकाशित कर दिया लगता है। अच्छा होता कि कुछ आलेखों की पुनर्समीक्षा की जाती और उन्हें वर्तमान समस्याओं के अनुरूप संशोधित कर लिया जाता।

पुस्तक में 'बाल-साहित्य समीक्षा- स्थिति, समस्याएं, संभावनाएं' अच्छा आलेख है और इसमें दिए गए दस सुझाव भी काफी उपयोगी हैं पर सवाल यह है कि उन पर ध्यान कौन दे? सरकार की तो सृजनकर्म के ही प्रति उदासीनता है और यदि सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थान कुछ काम कर रहे हैं तो वह रस्मअदाई के तौर पर ही कर रहे हैं। मीडिया के लिए भी अब सृजनात्मकता से अधिक उपभोक्ता दृष्टि ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है।

'1996 कैसा रहा बाल-साहित्य का परिदृश्य' आलेख में पृष्ठ 75 पर लेखक ने *100 श्रेष्ठ बालगीत* नामक जिस पुस्तक की प्रशंसा की है उसके संपादक का हाल यह है कि उन्होंने जिन बालगीतकारों की रचनाएं उस संकलन हेतु आमंत्रित कर प्रकाशित की हैं उनमें से अनेक को उस संकलन की एक मानद प्रति भी भिजवाने की तकलीफ नहीं की। हालांकि यह प्रसंग दुखद है पर इस प्रवृत्ति के शिकार अनेक लेखक समय-समय पर होते रहे हैं और इसकी निंदा हो की जानी चाहिए। इस तरह के संकलन निकालने का मोह आजकल बहुत से तथाकथित बाल-साहित्यकारों को लगा है। उनके इस कृत्य से उन्हें तथा प्रकाशक को कुछ आर्थिक लाभ भले ही मिल जाए पर इससे 'वास्तविक एवं मौलिक' रचनाकारों को अवश्य ठेस पहुंचती है। क्या यह उनका दायित्व है कि वे प्रकाशकों के पास याचकों की तरह उस संकलन की प्रति प्राप्त करने के लिए भाग दौड़ करते रहें? इसी तरह और भी अनेक समस्याएं हैं जो बालसाहित्यकारों के बीच गहन वैचारिक विमर्श की चुनौतियां प्रस्तुत करती हैं। *बालहंस* के योगदान पर लिखे गए आलेख में पिष्टपेषण तो काफी है पर उसमें प्रकाशित रचनाओं पर तटस्थ आलोचकीय दृष्टि की कमी है।

बाल साहित्य : शोध समीक्षा संदर्भ पुस्तक में महत्वपूर्ण सामग्री है पर इसके आवरण पर सुरेंद्र विक्रम के साथ 'संपादक' शब्द क्यों नहीं जुड़ा है इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं। हालांकि भीतर के पृष्ठों पर उनके नाम के साथ संपादक शब्द है पर भूल तो (भले ही वह मुद्रण की क्यों न हो) भूल है।

संदर्भ की दृष्टि से निस्संदेह यह पुस्तक पहली पुस्तक से ज्यादा उपयोगी है। हरिकृष्ण देवसरे का आमुख जहां तथ्यों की दृष्टि से प्रामाणिक है वहीं सुरेंद्र विक्रम के प्रति उनके अतिरिक्त मोहाविष्ट भाव को भी प्रदर्शित करता है। कभी-कभी ऐसा प्रशंसात्मक भाव युवा लेखकों को उनके पथ से विचलित भी कर देता है।

पुस्तक में अनुक्रम सूची नहीं है पर मोटे रूप से उसे चार भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में विभिन्न विश्वविद्यालयों से पीएच.डी उपाधि हेतु स्वीकृत तेईस शोध प्रबंधों के सार संक्षेप दिए गए हैं। दूसरे भाग में बालक और बाल-साहित्यकारों पर लगभग साढ़े छह सौ समालोचनात्मक आलेखों की वृहद सूची दी गई है। तीसरे भाग में साढ़े चार सौ बाल-साहित्यकारों के संपर्क सूत्रों की सूची है और चौथे भाग में दो परिशिष्टों के अंतर्गत बाल-साहित्य से संबंधित 62 शोधप्रबंधों तथा 21 अन्य प्रकाशित शोध ग्रंथों की सूची दी गई है। देवसरे का यह कहना सही है कि इतनी वृहद सामग्री को खोलकर क्रमबद्ध रूप में संकलित करना ही अपने आप में एक कठिन शोधकार्य है। सुरेंद्र विक्रम की संपादकीय भूमिका इन शोध प्रबंधों तथा बाल-साहित्य पर अब तक प्रकाशित विविध रचनात्मक सामग्री पर विवेचनापूर्ण दृष्टि से विचार करती है।

इस संदर्भ पुस्तक से कम से कम एक बात तो साबित हो ही जाती है कि पिछले पांच दशकों में बाल-साहित्य के क्षेत्र में विपुल लेखन हुआ है और शोध कार्य भी काफी संख्या में हुए हैं। जरूरत है तो बस इस बात की है कि इस सारी सामग्री पर तटस्थ आलोचकीय दृष्टि से विचार किया जाए और बदलते परिप्रेक्ष्य में उसका पुनर्मूल्यांकन भी किया जाए। विदेशों में 'बुक्स इन प्रिंट' शृंखला में हर वर्ष प्रकाशित पुस्तकों के संदर्भ ग्रंथ छपते हैं। भारत में बाल-साहित्य के क्षेत्र में ऐसी पहल होना अब भी शेष है।

— **रमेश तैलंग**

शताब्दी की कुछ चुनी हुई बाल कविताएं

बतूता का जूता

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

इब्न बतूता पहन के जूता
निकल पड़े तूफान में
थोड़ी हवा नाक में घुस गई
घुस गई थोड़ी कान में।
कभी नाक को, कभी कान को
मलते इब्न बतूता
इसी बीच में निकल पड़ा
उनके पैरों का जूता।
उड़ते-उड़ते जूता उनका
जा पहुंचा जापान में
इब्न बतूता खड़े रह गए
मोची की दूकान में!

चंदामामा की शान

बालस्वरूप राही

चंदामामा कहो तुम्हारी
शान पुरानी कहां गई?
कात रही थी बैठी चरखा,
बुढ़िया नानी कहां गई?
सूरज से रोशनी चुराकर
चाहे जितनी भी लाओ,
हमें तुम्हारी चाल पता है
अब मत हमको बहकाओ।
है उधार की चमक-दमक यह
नकली शान निराली है,
समझ गए हम चंदामामा
रूप तुम्हारा जाली है!

टीचर गुड़िया

शेरजंग गर्ग

चश्मा लगाके गुड़िया
लगती जवान बुढ़िया।
कुछ बड़बड़ा रही है
किसको पढ़ा रही है?
गुड्डे को है पढ़ाती
उसको सबक सिखाती।
थोड़ा-सा मुस्कराकर
गुड़िया को मुंह चिढ़ाकर।
पढ़ता है पाठ गुड्डा
करता है ठाठ गुड्डा!

कद्दू जी की बरात

शांति अग्रवाल

कद्दू जी की चली बरात
हुई बताशों की बरसात।
बैंगन की गाड़ी के ऊपर
बैठे कद्दू राजा,
शलजम और प्याज ने मिलकर
खूब बजाया बाजा।
मेथी, पालक, भिंडी, तोरी
टिंडा, मूली, गाजर,
बने बराती नाच रहे थे
आलू, मटर, टमाटर।
कद्दू जी हंसते मुस्काते
लौकी दुल्हन लाए,
कटहल और करेले जी ने
चाट-पकौड़े खाए।
प्रातः पता चली यह बात
सपना देखा था यह रात!

घर

दिविक रमेश

पापा क्यों अच्छा लगता है
अपना प्यारा-प्यारा घर,
घूम-घाम लें, खेल-खाल लें
नहीं भूलता लेकिन घर!
नहीं आपको लगता पापा
है मां की गोदी-सा घर
प्यारी-प्यारी ममता वाला
सुंदर-सुंदर न्यारा घर।
थककर जब वापस आते हैं
कैसे बिछ-बिछ जाता घर,
खिला-पिला, आराम दिलाकर
नई ताजगी देता घर!
पर पापा, इक बात बताओ
नहीं न होता सबका घर
क्या करते होंगे वे बच्चे
जिनके पास नहीं है घर?

कोई लाके मुझे दे

दामोदर अग्रवाल

कुछ रंग भरे फूल
कुछ खट्टे-मीठे फल
थोड़ी बांसुरी की धुन
थोड़ा जमुना का जल–
कोई लाके मुझे दे!
एक सोना जड़ा दिन
एक रूपों भरी रात
एक फूलों भरा गीत
एक गीतों भरी बात–
कोई लाके मुझे दे!
एक छाता छांव का
एक धूप की घड़ी
एक बादलों का कोट
एक दूब की छड़ी–
कोई लाके मुझे दे!
एक छुट्टी वाला दिन
एक अच्छी-सी किताब
एक मीठा-सा सवाल
एक नन्हा-सा जवाब–
कोई लाके मुझे दे!

हल्ला–गुल्ला

योगेंद्रकुमार लल्ला

एक आम का पेड़, लगा था
उस पर बहुत बड़ा रसगुल्ला,
उसे तोड़ने को सब बच्चे
मचा रहे थे हल्ला-गुल्ला।
पर मेरी ही किस्मत में था
उसको पाना, उसको खाना।
मैंने देखा स्वप्न सुहाना!
सारे बच्चे इम्तहान के दिन
बैठे थे अपने घर पर,
खुली किताबें रखीं सामने
सभी पास हो गए नकल कर।
पर मेरी ही किस्मत में था
सब बच्चों में अव्वल आना।
मैंने देखा स्वप्न सुहाना!
ओलंपिक के खेल हो रहे
भारत के ही किसी नगर में,
बच्चा-बच्चा खेल रहा था
घर-आंगन में, डगर-डगर में।
पर मेरी ही किस्मत में था
सारे पदक जीतकर लाना।
मैंने देखा स्वप्न सुहाना!

नानी और टी.वी.

सूर्यभानु गुप्त

नानी से अब कोई
सुनता नहीं कहानी,
जब से आया टी.वी.
हुई रिटायर नानी।
अब कहानियां अपनी
उसको लगें पुरानी,
बच्चों-संग अब टी.वी.
खुद भी देखे नानी।
हर पल नया तमाशा
हर पल नई कहानी,
टी.वी. तो है जैसे
नानी की भी नानी!

दही बड़ा

श्रीप्रसाद

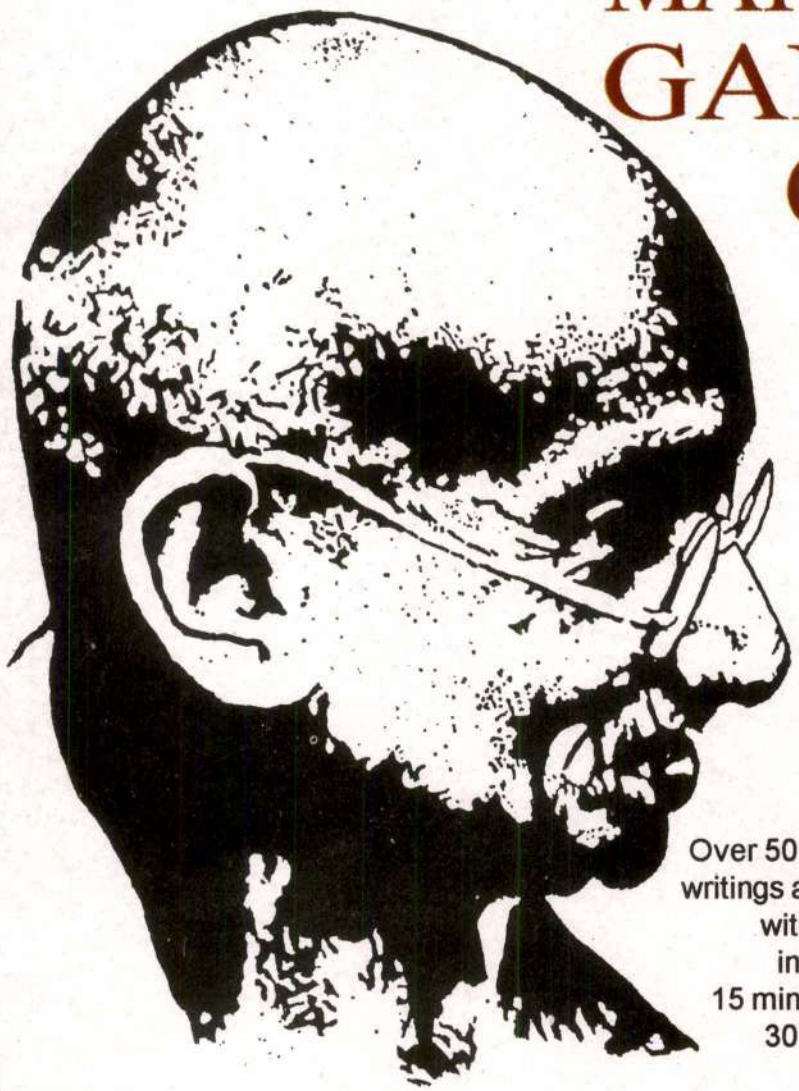
सारे चूहों ने मिल-जुलकर
एक बनाया दही बड़ा।
सत्तर किलो दही मंगवाया
फिर छुड़वाया दही बड़ा।
दिन भर रहा दही के अंदर
बहुत बड़ा वह दही बड़ा।
फिर चूहों ने उसे उठाकर
दरवाजे से किया खड़ा।।
रात और दिन दही बड़ा ही
सब चूहे अब खाते हैं।
मौज मनाते, गाना गाते
कहीं न घर से जाते हैं!!

यू (डी.एन.)- 49/99 प्राप्त
Postal Regn. No. (DL)/ 12035/99
Licenced U (DN)-49/99 to post without pre-payment at DPSO, Delhi

दिल्ली डाक
Delhi Postal

आर.एन. 701/57
R.N. 701/57

MAHATMA GANDHI CD



A
comprehensive
Multi-media CD
on Mahatma Gandhi.
Over 50,000 pages of Gandhiji's
writings arranged chronologically
with intensive indexing and
interactive retrieval paths.
15 minutes of Gandhiji's voice.
30 minutes of film footage.

Based on *Collected Works of Mahatma Gandhi* brought out by
Publications Division in 100 volumes.
Price: Rs.2,500/- per CD.

For business enquiries, contact our sales outlets at:
Patiala House, Tilak Marg, **New Delhi,** Ph.3387983; Super Bazar, Connaught Circus, **New Delhi,** Ph.3313308; Hall No.196, Old Secretariat, **Delhi,** Ph.2518906; Rajaji Bhavan, Besant Nagar, **Chennai,** Ph.4917673; 8, Esplanade East, **Calcutta,** Ph.2488030; Bihar State Cooperative Bank Building, Ashoka Rajpath, **Patna,** Ph.653823; Press Road, **Thiruvananthapuram,** Ph.330650; 27/6, Ram Mohan Rai Marg, **Lucknow,** Ph.208004; Commerce House, Currimbhoy Road, Ballard Pier, **Mumbai,** Ph.2610081; State Archaeological Museum Building, Public Gardens, **Hyderabad,** Ph.236393; 1st Floor, F-Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, **Bangalore,** Ph.5537244; CGO Bhavan, A Wing, A.B.Road, **Indore**; 80, Malviya Nagar, **Bhopal**; B-7/B Bhawani Singh Road, **Jaipur.**

सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित एवं मुद्रित तथा आकाशदीप प्रिन्टर्स, 20 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित। संपादक : सुभाष सेतिया